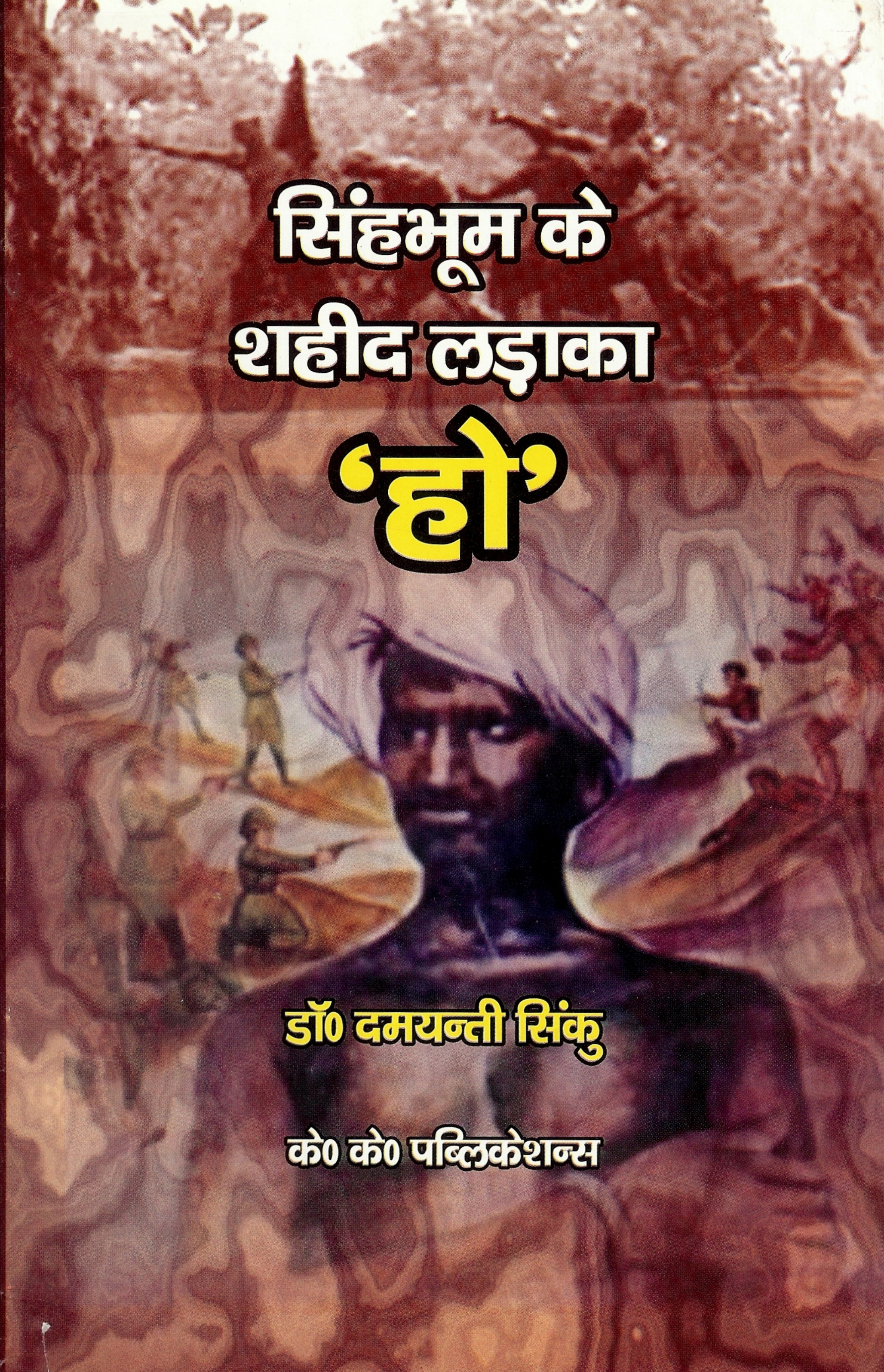


सिंहभूम के शहीद लड़ाका 'हो'

डॉ० दमयन्ती सिंकु

के० के० पब्लिकेशन्स

BVP- 2016
9/4/18

3/5

सिंहभूम के शहीद लड़ाका 'हो'

सिंहभूम के शहीद लड़ाका 'हो'

सम्पादक/लेखिका

डॉ. दमयन्ती सिंकु

एम.ए., पीएच.डी.

प्रकाशक

के. के. पब्लिकेशन्स

द्वितीय संस्करण : 2015

सामान्य : रु० 100.00
पुस्तकालय संस्करण : रु० 150.00

ISBN : 978-81-87568-57-5

प्रकाशक : के० के० पब्लिकेशन्स
618, कटरा, इलाहाबाद-211002 (उ.प्र.) भारत, फोन : **0532-6452973**

कम्प्यूटर यूनिट : **GLOBELTECH GROUP**

मुद्रक : **एकेडेमी प्रेस, इलाहाबाद**



सोबोन, माटा, बुरूंडा जोटोङ जिन्दाबाद!
पाटा, नाइकिया, बुरिया जुम्बल अमर रहे!!

हाडुवाकोमो, पोटो, टोपाये, डेबाये जिन्दाबाद!!
बेराई, नारा, पांडुवा, कोचेः, सुरदन अमर रहे!!

(अखिल भारतीय 'हो' सभा, जमशेदपुर (झारखण्ड)

समर्पित

परम श्रद्धेय स्व० माता-पिता

जगमोहन सिंकु एवं हर्षमती सिंकु

तथा बन्धु द्वेय

कमल किशोर सिंकु, हरिकृष्ण सिंकु

और विधान चन्द्र सिंकु

को सादर समर्पित



प्राक्कथन

इस पुस्तक के माध्यम से सिंहभूम के महान सेनानी एवं शहीदों की जीवनी संकलन करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में कई त्रुटियाँ संभव है। इसके निराकरण के लिए आपके सुझाव आमंत्रित हैं।

जंगल, पहाड़-पर्वतों की तराई में रहने वाले गुमनाम की जिन्दगी जीते हुए शहीद होने वाले तमाम झारखण्डी सपूतों को सबसे पहले नमन करते हैं। कितनों ने समाज के लिए, देश के लिए, अपने हक के लिए लड़ाई लड़ी और लड़ते हुए शहीद हो गये। उन वीर सपूतों ने अपनी जान की परवाह किये बगैर खून की होली में खुद को रंगने से अपने आपको वंचित न रख सके।

वीर सपूतों की जीवनी को ही समाज के सामने प्रस्तुत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

वीर सपूतों को यह भी मालूम नहीं कि देश के प्रारंभिक एवं प्रथम स्वतंत्रता सेनानी वीर आदिवासी ही थे जो घने जंगलों में रहते थे। गोरे अंग्रेजी शासन से उन्होंने जमकर टक्कर ली थी। इन आदिवासी शूरवीरों के लड़ने की कला एवं हथियारों से अंग्रेज थर-थर कांपते थे। ये बड़े हर्ष की बात है कि हम आज शाल वृक्ष के नीचे आजादी का अनुभव कर रहे हैं। करोड़ों आदिवासी आज भी जंगलों में अपनी जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं। आजादी के विकास पथ से ये कोसों दूर हैं।

इस पुस्तक का संकलन करने में अनेक विद्वानों का योगदान रहा है। अनेक संदर्भ पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं की सहायता से इस पुस्तक की रचना हुई है। इसके बिना यह कार्य संभव नहीं था। सभी के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ।

डॉ. दमयन्ती सिंकु

विषय-सूची

अध्याय 1

सोबोन सरदार

इतिहासकारों के अनुसार हो लोग मोगोलमुदी (सिंहभूम) में 52वीं शताब्दी से रहते आ रहें हैं। प्राचीन काल से सिंहभूम घने जंगलों से, चारो ओर पत्थर एवं जंगल-झाड़ से घिरा हुआ है। 'हो' जाति के लोग जंगल-झाड़ को काट कर, साफ कर, गाँव-घर रहने योग्य बनाया और खेती-बारी का कार्य करते थे। दूसरे राज्य या दूसरे देश के साथ किसी तरह का झंझट झमेला नहीं था। आने-जाने का रास्ता जंगलों से भरा पड़ा था। इस राह पर चलना काफी डरावना था। रास्ते में बाघ-भालू कहाँ पर निकल आयेंगें, सोचकर लोग डरते थे।

वर्ष 1765 के आसपास झारखंड राज्य "जंगलो के महल नाम" से प्रचलित था। उस समय मोंगोलमुदी एक अनजान नाम था। मोंगोलमुदी किसी को मालूम न था। इसी का एक भाग कोल्हान है। उस समय यहाँ पर सिर्फ 'हो' जाति के लोग निवास करते थे। इसलिए 'हो दिसुम' के नाम से चर्चित हो गया। हो जाति के लोग ही यहाँ राजा एवं प्रजा बन गये। दोनों वर्ग के लोग एकजुट होकर रहने लगे।

उस समय पोड़ाहाट के राजा 'हो जाति' को खुशी-खुशी जीवन-बसर करते देख ईष्या से पागल हो गया था। वे 'हो' लोगों के क्षेत्र को तिरछी नजर से देखते थे। इस बात से हंसी आता है कि हो क्षेत्र को राजा सिर्फ अपना समझते और हथियाना चाहते थे। ऐसा इसलिए करते थे कि हो लोग आपस में उलझ जायें एवं छिन्न-भिन्न हो जाएँ। लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का रणनीति बनाता था। परन्तु हो जाति के लोगों की जंगल-जमीन, रीति-रिवाज और संस्कार के सामने राजा का दाल गलता नहीं था। हो दिसुम (कोल्हान) के खरसांवा-सरायकेला और पोड़ाहाट के राजाओं का सहयोग लेने के लिए अंग्रेजों को आमंत्रण किया गया।

20 फरवरी, 1820 को मेजर रफसेज का सरायकेला आगमन हुआ। पोड़ाहाट, सरायकेला और खरसांवा के राजाओं ने इकररनामा पर हस्ताक्षर किये। इस तरह से अंग्रेजों के हाथों अधिकार चला गया। इन लोगों का राज्य छिन गया। इसके बाद मेजर रफसेज 22से 24 फरवरी तक राजाबासा गांव में बस गये। बैठकी बुलाई और इस बैठकी में मुण्डा-मानकी को न्यौता दिया गया। इन लोगों के सामने इन्होंने 5 मांगे रखी।

1. हर एक जोड़ा बैल पर राशि देय हो (प्रत्येक जोड़ा पर 50 पैसे)।
2. सिंहभूम (मोंड़ो) में उड़िया का पढ़ाई होना चाहिए।
3. कोल्हान के बीचो बीच आने-जाने का जो रास्ता है, वहाँ जंगल-झाड़ साफ करवाना।
4. कोल्हान के गाँव, घर वाले अपने मर्जी से न वरोनोः (वरोन शर्त)
5. चोरी, छिनतई, मार-पीट करने वालों के दण्ड को सरकार के पास से स्वीकृति प्राप्त होना।

इन 5 मांगों (अनासि-वरोन) प्रचार-प्रसार करते हुए अलग-अलग जगह के मुण्डा-मानकियों को स्वीकार कराना एवं 25 मार्च, 1820 को मेजर रफसेज गुमला पीढ़ का चाईबासा बरकन्दा टोली में पहुँचा। वहाँ बस कर शर्त मनवाने के लिए मुण्डा-मानकियों को बुलवाया गया। इसके बाद बड में स्थित जैंतगढ़ तक पहुँचे। बड़ पीढ़ में रहने वाले जमींदार रघुनाथ बीसी के यहाँ पहुँचे।

उस समय कुन्डियाघर गाँव में सोबोन मुण्डा सरदार की तरह वहाँ रहते थे। सोबोन मुण्डा जोगना गोन्डाई के वंशज थे। इस तरह इनका वंशज था, बिन्दु बूढ़ा के सात बच्चे थे। लोपो, रिपा एवं के.के. सोबोन। लोपो बूढ़ा का पुत्र था। सोबोन के बच्चे क्रमशः जुमाल, मुदु, सागर, मानेया दामु और कोलय। इस वंश के पूर्वज कुन्डियाघर भोण्डा, तिलायपी और नारंगा में रहते थे। इनका मुख्य जड़ वाला गाँव कुन्डियाघर है।

उस समय सोबोन मुण्डा सरदार हुआ करते थे। बहुत शक्तिशाली एवं भरोसेमन्द था। लोग इनका काफी मान-सम्मान करते थे। रघुनाथ बीसी एवं पोड़ाहाट के राजा, रफसेज आंडे और के. इशारा के अनुसार बड़ पीढ़ के लोग बहुत खुशीपूर्वक जीवन निर्वाह कर रहे थे। सोबोन मुण्डा से ये बर्दास्त नहीं हुआ। इसलिए सोबोन मुण्डा बमान घाटी गौनी के लालगढ़ और आंवला पीढ़ के हो लोग पाँच मांगो को स्वीकार करने के लिए दोस्ती का रिश्ता बनाया। दोस्ती के आड़ में सोबोन मुण्डा बढ़पीढ़ और वनतरिया पीढ़ के लोगों को खबरदार किया कि पोड़ाहाट राजा, मेजर रफसेज और रघुनाथ बीसी जबरदस्ती मांगे गये पाँच मांगों को हमलोगों का हक छिना गया है। ऐसी स्थिति में हमलोग तुमलोगों को भी परेशान करेंगे। सोबोन सरदार पहले और निर्देशानुसार सबों से दोस्ती निभाता था। मांगे और शर्त्ते को मानने की बात चारों तरफ आग की तरह फैल गया। इस बात की जानकारी मेजर रफसेज के कान तक भी पहुँच गया। परन्तु मेजर रफसेज मांगों और शर्त्तों को नहीं मानने के लिए सोबोन सरदार पर काफी नाराज हो गया।

हीबी-बीबी चुनौती

उस समय मेजर रफसेज की तबियत अचानक बिगड़ गया था। वह जैंतगढ़ के रास्ते सम्बलपुर जाते वक्त रघुनाथ बीसी को आदेश दिया कि किसी भी तरह से सोबोन सरदार

को पकड़ कर या उसे ठगकर मेरे पास सम्बलपुर लाये। मेजर रफसेज के आदेशानुसार उसे सम्बलपुर ले जाया गया। उसके पश्चात् उसे ढेंकी से कूट कर चिपटा कर दिया गया याने कि चूड़ा बनाकर उसे मार दिया गया। सोबोन सरदार के मारे जाने की खबर जंगल की आग की तरह चारो ओर फैल गया।

इसके बाद बड़ पीढ़, लालगढ़ पीढ़ और आंवला पीढ़ के लोगों ने एक बैठक बुलायी। बैठक में यह चर्चा किया गया कि पिंगुवा गोत्र समाज के लिए बड़ी चुनौती बन गई है। सोबोन मुण्डा का बड़ा लड़का जुमाल एवं नुनीहाम (समड गोत्र) और रूइया-बलान्डिया का माटा मुण्डा के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाया। सोबोन मुण्डा को चूड़ा बनाकर मार डाला गया। रघुनाथ बीसी को मार कर बदला लेने के लिए प्रण किया गया। इस तरह एलान कर जुमाल,नुनीहाम और माटा मुण्डा लोगों के नेतृत्व में कुन्डियाघर, मुन्डा, रूइया-बलन्डिया, खड़बन्ध, पोखरिया के लोग और सबसे ज्यादा तेन्दो पिंगुवा के भाई-बन्धु लगभग पांच से छह सौ लोग जमा हुए। 5 फरवरी, 1830 के दिन सभी लोग जैंतगढ़ पहुँचे। परन्तु पहले ही पुटीदार (खबरी) को मालूम चल गया और रघुनाथ बीसी सपरिवार मोलोमनपुर करंजिया (ओड़ीसा) भाग गया। यह सुन लोगों ने गुस्सा से जैंतगढ़ स्थित मकान एवं धन-सम्पत्ति को लूट लिया। नुनीहाम गुस्सा से एक घर में रही गर्भवती स्त्री जो ब्राह्मण स्त्री थी, उनको भाभी बोलते साथ ही चाकू मार कर मार डाला। उसके बाद गाय, बैल और बकरी को खेदते हुए वापस चला आया। कुछ दिनों के बाद रघुनाथ बीसी सपरिवार एवं सिपाहियों के साथ वापस जैंतगढ़ लौट आया। घर तहस-नहस स्थिति में और धन-सम्पत्ति लुट चुकी थी। गाँव बिगड़ चुका था यह देख कर वह गुस्से से लाल हो गया।

जुमाल नुनीहाम और माटा मुण्डा सभी लोगों का गुस्सा आग की तरह जल रहा था। इन लोगों के कान तक यह खबर पहुँच गयी कि रघुनाथ वीसी वापस जैंतगढ़ आया हुआ है। इस बार जुमाल और माटा मुण्डा लगभग 1000 से 2000 लोगों को लेकर 15 फरवरी, 1830 को पुनः जैतगढ़ पहुँचे। पहले की तरह ही खबरी ने रघुनाथ वीसी को बता दिया कि इस बार जुमाल काफी संख्या में लोगों को लेकर आ रहा है। इस खबर के मिलते ही रघुनाथ वीसी जैंतगढ़ के बगल वाले गाँव रिमिड़ि में सपरिवार भाग कर कहीं छिप गया। रिमिडि गाँव को चारों तरफ से घेर लिया गया। जैंतगढ़ में हाहाकार मच गया। गाँव-घर में तबाही मचा कर, गाय, बैल, बकरी आदि को वे लोग साथ लेते गये। ऐसा करके भी इन लोगों का गुस्सा शांत नहीं हुआ।

रघुनाथ बीसी को पीढ़ में रहने वाले लोग पसंद नहीं करते थे। रघुनाथ उकसाने वाला काम कर रहा था। क्योंकि वह एक पयला नमक के बदले दो पयला धान जबरदस्ती वसूलता था। जैसा कि दो पयला नमक के बदले 12 पयला धान 2 वर्ष में बलन्डिया गाँव के माटा मुण्डा से लिये थे। ठीक उसी तरह उस समय पोड़ाहाट के राजा अचेत सिंह के नाम से प्रत्येक घर से एक-एक पयला घी माँगा जाता था। रघुनाथ बीसी के इस ज्यादती से पीढ़ के लोग

गुस्सा से तिलमिला उठे। इन लोगों ने आन्दोलन कर ऐलान कर दिया। इस आन्दोलन की खबर चारों तरफ फैल गयी। इस बात की खबर कैप्टन बिलिकिन्सन तक भी पहुँचीं 'हो' लोगों के रिवाज के हिसाब से इन लोगों से दोस्ती का हाथ बढ़ाया। इसके बाद एक जोड़ा बैल का जो रकम तय था उसके बदले गाँव-गाँव से एक रुपया या तो दो रुपया लेने का ऐलान किया गया। इन लोगों का गुस्सा स्वतः समाप्त हो गया, लोग शांत हो गये।

सोबोन मुण्डा का जमीन, रीति-रिवाज और समाज का शिकायत होने लगा। इनका मित्र (पोड़ो-सेंगेल) और अंग्रेज तक वहाँ से नहीं भागे जब तक वहाँ आग जलती रही। सोबोन मुण्डा के द्वारा ही कोल्हान में स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरुआत किया गया।

स्मरणीय योग्य बात यह है कि कोल्हान में पृथ्वी, दस्तुर, और इतिहास का शुरूआत यहीं से हुआ था।

हिन्दी रूपान्तर– डॉ. दमयन्ती सिंकू
(लेखक-घनश्याम गागराई)

❖❖

अध्याय 2

बागुन पलटोन

छोटानागपुर के कोल्हान क्षेत्र में अवस्थित सेरेंगसिया घाटी अपने आप में कई यादें समेटे हुए है और लड़ाका 'हो' लोगों के बहादुरी की गवाही भी देता है। हिन्दुस्तान के इतिहास में ही नहीं सेरेंगसिया घाटी का वर्णन अंग्रेजों के डायरी के पन्नों में भी अंकित है। गजेटियर में स्पष्ट अक्षरों में उल्लेखित है। सेरेंगसिया घाटी में जो पश्चिमी सिंहभूम चाईबासा से करीब 15 कि.मी. पर है। कोल्हान के लोगों ने ब्रिटिश सरकार के सैनिकों को गुरिल्ला युद्ध की नीति अपना कर मौत के घाट उतारा था। इस तरह अंग्रेजों के लिए यह घाटी 'मौत की घाटी' बन गया था। मौत की यह घाटी गोरे चमड़े वाले ब्रिटिश सैनिकों के खून से रक्त-रंजित हो गया था। लोग कहते हैं कि आज भी कभी-कभी इस घाटी में घोड़ों के टापों की आवाज और मरते हुए लोगों के कराहने की आवाज सुनाई पड़ती है। पहले जब चाईबासा, हाटगामरिया सड़क नहीं था उस समय बांकुड़ा, मिदनापुर (बंगाल) को ओड़िसा से मिलाने वाली सड़क सेरेंगसिया घाटी होते हुए गुजरती थी। सेरेंगसिया घाटी से कुछ दूरी पर एक गाँव है, रेला और उस गाँव के मुण्डा का नाम था सेगा मुण्डा। सेगा मुन्डा पढ़ा लिखा नहीं था, पर उसमें जातीय गौरव और स्वाभिमान की भावना फूट-फूट कर भरी हुई थी। ब्रिटिश राज्य में बहुत सारे मानकी मुण्डा अंग्रेजों के चाटुकार बन गये थे। उनकी सहायता करने के कारण ही अंग्रेजों ने उन्हें बाद में राय बहादुर, राय साहब जैसे शब्दों से अलंकृत कर पुरस्कृत किया था। सेगा मुण्डा के नाम से उस समय अंग्रेजों ने गिरफ्तारी का फरमान जारी किया था। सेगा मुंडा भी जीवट वाला आदमी था। जब तक जिन्दा रहा अंग्रेजों के खून से अपने तीर के नोक को धोया करता था। सेगा मुंडा के मृत्यु के दो माह बाद उसको एक पुत्र हुआ जिसका नाम बागुन रखा गया। बागुन जगन्नाथपुर स्कूल में पढ़ रहा था। देश की आजादी के बाद वह सेना में भर्ती हो गया। बागुन को लोग पलटोन के नाम से जानने लगे। अपने क्षेत्र में वह काफी लोकप्रिय था। उस क्षेत्र के गांवों से और भी लोग सेना में थे। पर बागुन पलटोन का क्रियाकलाप सब से भिन्न था।

गाँव के युवक जब भी छुट्टी में घर जाते नयी साईकिल खरीदते, हाट-बाजार, मेला का चक्कर लगाते, हंडिया-दारू (देशी -विदेशी) में डूब जाते । पीने-पिलाने के चक्कर में

अपने परिवार की सुध नहीं रहती और छुट्टी समाप्त होते-होते उनकी ऐसी स्थिति होती कि साइकिल और हाथ की घड़ी तो सस्ते दामों में बेच डालते तथा वापस लौटने के लिए साहूकारों से कर्जा लेना पड़ता था। पर बागुन पलटोन न हड़िया पीता और न ही दारू छूता। वह गाँव के युवकों के लिए आदर्श था। जब भी छुट्टियों में वह गाँव आता, सामाजिक कार्यों में व्यस्त हो जाता। स्कूलों में जा कर अपने गाँव के छात्र-छात्राओं की उपस्थिति की जानकारी लेता। पढ़ने लिखने में तेज बच्चों को आर्थिक सहायता प्रदान करता। गाँव के बुजर्गों के साथ बैठकी का आयोजन कर सामाजिक कुरीतियों की चर्चा कर उन्हें दूर करने की सलाह देता। रेला गाँव को साक्षर बनाने में लोग बागुन पलटोन का ही श्रेय मानते हैं। उसके गाँव में समाज द्वारा निर्धारित तिथियों में ही सभी पर्व त्यौहार मनाये जाते हैं। गाँव के आपसी झगड़े विवादों को कोर्ट कचहरी में ले जाने वालों को गाँव के लोगों के द्वारा सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। इस तरह बागुन पलटोन ने गाँव को एक दिशा दिखाया। उस गाँव के लोग हड़िया को मात्र पूजन कार्यों में व्यवहृत करते हैं।

बागुन पलटोन के आने पर समूचे गाँव में त्योहार सा वातावरण हो जाता था। आज समूचे गाँव में सन्नाटा था, सभी के चेहरे पर खामोशी और मातम का आलम था। बागुन पलटोन आज चिर निद्रा में था। सुना है सरकार रेला गाँव के इलाके के सभी जमीन को किसी योजना के नाम पर अधिग्रहण करने जा रही थी। पलटोन बागुन ने अपने पुरकाती-पुस्तैनी खूँटकांटी रैयती जमीन को अधिग्रहण से बचाने के लिए गाँव के लोगों को संगठित कर जुलूस के रूप में सेरेंगसिया घाटी होते हुए जिला हेडक्वार्टर की ओर प्रस्थान किया था। पर अचानक गोली चलने की आवाज हुई और प्रदेश का एक अनुशासित सैनिक बागुन पलटोन का लहू-लुहान शव सेरेंगसिया घाटी में लोटने लगा। देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने में इतिहास के पृष्ठों की संख्या में वृद्धि करने वाले सेरेंगसिया घाटी में आज अपने ही देश के सिपाहियों की गोली से देश के एक अनुशासित जवान का रक्तरंजित शरीर छटपटा रहा था। बच्चे, बूढ़े, जवान सभी फूट-फूट कर रोने लगे थे पर इस ऐतिहासिक घाटी में सन्नाटा, बिल्कुल मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। रेला गाँव में बागुन पलटोन की समाधि बना दिया गया है।

(लेखक-घनश्याम गागराई)

❖❖

अध्याय 3

विजय सिंह सोय

कोल्हान के आदिवासियों के प्रति लड़ाई लड़ने वाले नेता के रूप में विजय सिंह सोय की अलग पहचान है। स्व. विजय सिंह सोय का जन्म 11 नवम्बर 1956 को खरसांवा ाखण्ड के पिन्डकी गांव में कातुराम सोय व आड़शी सोय (हो) के घर में हुआ था। बचपन में बहुत सीधा सादा जीवन व्यतीत किए थे। स्व. विजय सिंह की प्रारंभिक शिक्षा सरायकेला के मध्य विद्यालय में हुई। माध्यमिक शिक्षा खरसांवा उच्च विद्यालय में हुई। उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने मैट्रिक उत्तीर्ण होने के बाद टाटा कॉलेज, चाईबासा से स्नातक प्रतिष्ठा की पढ़ाई पूरी की। पढ़ाई के दौरान अवकाश के दिन अपने पिता कातुराम सोय एवं उनके बड़े भाई दामु हो तथा छोटा भाई बोटा हो की खेती के काम में सहायता करता था। आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण उनकी दीदी हड़िया बेचकर एवं मजदूरी कर पढ़ाई पूरा करवाया। आदिवासी महिलाओं के शोषण के प्रति उन्हें पहले से ही मालूम था। शोषण के प्रति जागरूक होने पर मात्र 22 वर्ष की आयु में 1975 में संथाल परगना छात्र संगठन से जुड़े। उसी वर्ष खुंटपानी प्रखण्ड के गम्हारिया गांव की कुंती से विवाह हो गया। शोषण मुक्त करने के लिए अपना 'विजयक दल' नामक संगठन में सुखलाल सोय, पातर हेम्ब्रम, सोमय गागराई, मेधु प्रधान, दिलीप प्रधान, कुंवर बानरा, जितमोहन, लक्ष्मण गिलुवा, सालुका पंडेया आदि शामिल थे। 1982 में छोटे भाई शूर सिंह सोय की इस टीम ने अपराधी उन्मूलन अभियान शुरू किया। इस अपराधी उन्मूलन अभियान ने राजनीतिक रूप ले लिया जिसे 1985 के चुनाव में सिंहभूमि जिले के खरसांवा विधानसभा क्षेत्र से चाईबासा जेल में कैद रह कर अपराधी पृष्ठभूमि के विजय सोय ने भारी मतों से जीता। सीधा-सादा जीवन बिताने वाला मासूम सा चेहरा, हालात से बदला लेने पर अपराधी के नाम से मशहूर हुआ। विजय दल नामक संगठन से अरसे तक वहां के लोगों को कँपाता रहा था। खरसांवा के उस पहाड़ी इलाके में विजय दल का एक मात्र काम था अपने दुश्मनों का चुन-चुन कर हत्या करना। विजय दल जातीय आधार पर गठित कोई सेना नहीं था बल्कि यह तो विजय सिंह सोय की सेना बतायी जाती थी। इस क्षेत्र में उनके प्रतिद्वंदी रहे थे चिंतामणि महांती। महांती के पास भी अपना फौज-फाटा कम नहीं था। इन दो प्रतिद्वंदी गुटों के बीच वर्षों से खूनी झड़पों का सिलसिला चल रहा था और दर्जन से अधिक लोगों की जान जा चुकी थी। 18 जुलाई,

1986 को विजय दल ने बड़ाबम्बों गांव में सुकुवा नामक व्यक्ति की हत्या कर दी थी। 11 जून, 1986 को विजय दल के एक सदस्य को चामोदा गांव के लखन गोप की हत्या ग्रामीणों की भीड़ ने कर दी थी। उसी दिन को चामोदा गांव के ही एक अन्य व्यक्ति सुखराम सोय की भी हत्या हुई थी। ग्रामीणों के बढ़ते प्रतिशोध और अपने दल के सदस्यों के मारे जाने से नाराज विजय दल के सोमय गागराई और हुंडरू समेत कुछ अन्य सदस्य बड़ाबम्बो गांव पहुंचे गये। इस अचानक होने वाले हमले का ग्रामीणों ने जमकर विरोध किया था। भागते-भागते सोमय हुन्डर तेलांगुजुड़ी गांव के एक घर में जा छिपे थे। ग्रामीणों की भीड़ ने उस घर को घेर लिया था। किन्तु तब तक साथियों के बचाव में जीजोकुड़मा गांव से गिरोह के हथियारबन्द लोग पहुंच गये और निहत्थे ग्रामीणों पर टूट पड़े। शेष लोग तो भाग गये थे किन्तु सुकुवा नामक व्यक्ति विजय दल के हाथ पड़ गया और मारा गया था। उस घटना के बाद न केवल बड़ा बम्बो गांव के लोग आतंकित थे वरन! पडोस के सोनापास, रूगड़ी, सुपाइ साई, कोतवालय, तेलाइडी, बड़ाऊरमा, सिंगाड़ी, लोसोदिकी, पिताकला और मादेउबदा सरीख अनेक गाँव डर से सहमे हुए थे कि प्रतिशोध में पता नहीं कब हत्यारी जमात का कहर ग्रामीणों पर टूट पड़े। हत्यारी जमात के बार में पूछने पर ग्रामीण मुँह खोलने से डरते थे। बड़ाबम्बों के भगीरथ महतो ने रोमांचित हो कर कहा था– बाबू मौत नाचती रहती है हमारे गावों में। पुलिस भी डरपोक है कुछ नहीं करती। विजय दल के लोग कभी भी सीने में गोली दाग कर चल देंगे। हम लोग यहाँ से भागकर जाएं भी तो कहाँ। छोटा बम्बो गांव के गोकुल चंद्र महतो की जान भी किसी तरह बच पायी थी। रोलाडीह हाईस्कूल में शिक्षक गोकुल महतो को स्कूल जाने के रास्ते में ही हथियारबंद विजय दल ने घेर लिया था लेकिन गोगुल के भाग्य में कुछ दिन और जीना बाकी था सो किसी तरह उस हत्यारी पलटन के सामने गिड़गिड़ा कर गोकुल अपनी प्राण रक्षा कर सके थे। सोना पास गांव के बेनी महतो के साथ भी कम हादसा नहीं हुआ था। बेनी महतो केन्दु पत्ते का कारोबार कर गुजर बसर करते थे। अचानक विजय दल सोना पास गांव में आ धमका और बेनी महतो के तमाम केन्दु पत्तों को जलाकर राख कर दिया। खरसावां क्षेत्र खनिज संपदा से बेहद संपन्न रहा है। लेकिन यह संपदा खरसांवा के लोगों के लिए विपदा का कारण भी रही है। इस क्षेत्र के गलुडीह में डायनामाईट की खदानें हैं। डायनामाईट पोटेशियम का एक महत्वपूर्ण स्रोत है और उर्वरक निर्माण में प्रयुक्त होता है। एक फरवरी, 1925 से गालुडीह में केन्द्र सरकार द्वारा संचालित लेप्सो डायनामाईट माईस है। इस कीमती डायनामाईट की तस्करी का धन्धा अरसे से चलता रहा है। डायनामाईट के इस अवैध धन्धे में अमदा के मुखिया चिंतामणि महान्ती डायनामाईट किंग के नाम से इलाके में मशहूर थे। डायनामाईट के धंधे के चक्कर में चिंतामणि महान्ती एक बार जेल की हवा भी खा चुके थे। डायनामाईट किंग के प्रभाव क्षेत्र में विजय सोय के विधायक बनकर आ धमकाने और उन्हीं के साम्राज्य में उनको चुनौती देने के बाद खूनी प्रतिद्वंदिता का सिलसिला शुरू हुआ। विजय सिंह सोय के गांव पिण्डी की और चिंतामणि महान्ती के गांव छोटा आमदा के बीच की दूरी बस एक किलोमीटर थी। 1980 में रांची विश्वविद्यालय में पढ़ाई कर रहे विजय सिंह सोय जब पढ़ाई लिखाई को तिलांजलि

देकर स्थायी रूप से खरसांवा में रहने लगे तो डायनामाईट किंग चिंतामणि से मुठभेड़ शुरू हो गयी थी। शुरू में चिंतामणि महांती से मुकाबले के लिए ही गठित हुआ था विजय दल। पर विजय दल नामक संगठन का संचालक होने को विजय सिंह लगातार नकारते रहे। उनका कहना था कि कुछ लोग उनके नाम पर ऐसी हरकत करते हैं तो भला वह क्या कर सकते हैं! लेकिन स्थानीय लोगों का कहना था कि दिलीप प्रधान सोमय, हुडरू, जरमन, सपन उर्फ कालो माइती सरीखे लोगों के साथ विजय सिंह सोय खुलेआम घूमते रहते थे। जो लोग विजय दल के सदस्य के रूप में कुख्यात थे और ग्रामीणों को आतंकित करते रहते हैं, हत्याएं करवाते थे। विजय सिंह सोय 1985 के विधानसभा चुनाव में चाईबासा जेल में बंद रहने के बावजूद भारी मतों से जीते थे। 1976 में "छोटानागपुर संथालपरगना युवा छात्र संघ" का गठन हुआ था। इसके अध्यक्ष थे सालखन मुर्मू और महासचिव थे करमा उरांव। विजय सिंह सोय इस संघ के उपसचिव थे। विजय की गतिविधियाँ यहीं से शुरू हुई थी। धीरे धीरे विजय ने इलाके के अपराधी तत्वों को भी एकजुट किया था और उनकी राजनीति चल निकली। खरसांवा क्षेत्र में हुए दो दर्जन से अधिक हत्या के मामलों के संबंध में जहां विजय सिंह सोय चिंतामणि पर दोषारोपण करते रहे वहीं चिंतामणि का कहना था कि हत्या करवाने का चस्का विजय सोय को है। विजय ने आरोप लगाया था कि खरसांवा स्टेशन के पास नया बाजार में उनका एक रिश्तेदार दर्जी का काम करता था। उसी के साथ हारगू हो नाम का एक लड़का रहता था। हारगू की एक महिला रिश्तेदार को लेकर चिंतामणि का भांजा भाग गया। हारगू ने इसका विरोध किया, तो एक दिन उसकी हत्या कर दी गयी। फिर थोड़े ही दिनों बाद हारगू के चचेरे भाई दिकु हेम्ब्रम, जिसकी लड़की को लेकर चिंतामणि का भांजा भाग गया था, की भी हत्या काली पूजा मेले के दौरान कर दी गयी थी। विजय सोय का आरोप था कि दिकू की हत्या में भी चिंतामणि का हाथ था। हारगू की हत्या का बदला लेने के लिए विजय गुट सक्रिय हुआ था और इसी क्रम में चिंतामणि के एक खास आदमी गोविंद प्रधान जिसका नाम हारगू हत्याकांड में आया था, उसको भी दिन दहाड़े खरसांवा के मिश्रा होटल के सामने गोली मार दी गयी थी। गोविंद प्रधान हत्याकांड में विजय सोय, उनके भाई सुखराम सोय, बोका महतो, मेधू प्रधान, पोको हो आदि का नाम आया था। इसी मामले को लेकर विजय सोय, सुखराम सोय व बोका महतो आदि जेल चले गये थे। एक दिन सुखराम सोय व बोका महतो को जब पुलिस जत्थे द्वारा जेल से अदालत लाया जा रहा था कि चाईबासा के जैन मार्केट के पास एक सशस्त्र जत्थे ने सुखराम और बोका पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलायी थी। सुखराम सोय तो वहीं ढेर हो गये पर बाका महतो की जान बच गयी थी। सुखराम सोय हत्याकांड के मामले में चिंतामणि महांती, मृत गोविंद प्रधान के भाई गोपाल सोय, सियाराम प्रधान आदि का नाम आया था। विजय के एक भाई सुर सिंह सोय पर भी कुछ अपराधिक मामले थे। पुलिस उसे तलाश रही थी। चिंतामणि गुट को इस बात की भनक मिल गयी कि सुरसिंह सोय ट्रेन से जमशेदपुर जा रहा था, चिंतामणि गुट ने पुलिस को इत्तला

कर दी। सूर सिंह सोय को पुलिस ने मुठभेड़ दिखाकर गोली से उड़ा दिया था, विजय सोय का आरोप था कि सुर सिंह की हत्या चिंतामणि के बहकावे में आकर खरसांवा थाने के एएसआई ताराचन्द राय ने की थी।

इस तरह जहां चिंतामणि गुट ने विजय सोय को जगह-जगह मात दी थी वहीं बदला लेने में विजय भी नहीं चूके थे। चिंतामणि महान्ती का आरोप था कि विजय सोय से उनके तनाव की शुरूआत तब हुई थी जब 1980 में खरसांवा के नया बाजार में सुदना साव नामक एक व्यवसायी के यहां डाका पड़ा था। चिंतामणि का कहना था कि यह डाका विजय के गिरोह ने डाला था। पुलिस को उन्होंने उन डाकुओं को पकड़वाने में मदद की थी। उन्होंने बताया था कि विजय दल ने पदमपुर के राधे सिंह की हत्या करवायी थी। दूसरी तरफ विजय गुट का आरोप था कि चिंतामणि ने 1981 में चाईबासा के मुफसिल थाने में एक केस दर्ज कराया था, जिसमें विजयसिंह सोय, सुखराम सोय व राधे सिंह का भी नाम था और चिंतामणि गुट द्वारा ही सुखराम व राधे दोनों की हत्या करवा दी गयी। वहीं चिंतामणि का आरोप था कि कुचाई थाने के चाकरी गांव का कुंटिया नामक एक आदिवासी की विजय के दल द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया था। उनके मुताबिक दालईमला गांव के बुधराम सोय की हत्या में भी विजय दल का ही हाथ था। क्योंकि वह विजय सोय के आतंक के खिलाफ मुखर रहा था। इसी तरह चक्रधरपुर थाने रोलाडीह गांव के बुधराम सोय की हत्या में भी विजय दल का ही हाथ था। क्योंकि विजय सोय आतंक के खिलाफ मुखर था। इसी तरह चक्रधरपुर थाने के रोलाडीह गांव के तुलसी महतो और अरोवा गांव के प्रधान जाति के दो भाई बड़ाबाबू और छोटा बाबू की हत्या भी विजय दल द्वारा की गयी थी। सुपाई साई गांव के पदमलोचन प्रधान की हत्या में भी विजय दल पर ही आरोप लगता था। चिंतामणि का आरोप था कि खरसांवा रेलवे प्लेटफार्म पर इस व्यक्ति की हत्या में भी विजय दल का ही हाथ था। बाद में विजय सिंह सोय कांग्रेस में शामिल हो गये थे। 1990 में वे फिर खरसांवा से विधायक चुने गये। 1991 के संसदीय चुनाव में विजय सोय को सिंहभूम संसदीय सीट से कांग्रेस का उम्मीदवार बनाया गया, पर इस बार कांग्रेस-विरोधी लहर के कारण बाहुबल के बावजूद विजय सोय चुनाव हार गये मात्र वह भी हजार मतों से। 1995 में तीसरी बार विधायक बनने की तमन्ना लिए खरसांवा से विधानसभा चुनाव लड़ा। झामुमो ने उनके विरूद्ध नई छवि अर्जुन मुण्डा को उतारा, अर्जुन मुण्डा ने चुनाव जीतकर विजय सिंह सोय से खरसांवा सीट छीन ली। 1996 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस ने सिंहभूम संसदीय सीट से विधायक प्रदीप कुमार बालमुचू को अपना प्रत्याशी बनाया। विजय सिंह सोय बागी प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़े और दस हजार मतों से भाजपा प्रत्याशी चित्र सेन सिंकु से चुनाव हार गये। इस चुनाव में भले ही सोय को हार का सामना करना पड़ा परन्तु पार्टी नेतृत्व को यह जताने में सफल रहे कि उन्हें प्रत्याशी न बनाये जाने का फैसला गलत था। 1998 के लोकसभा चुनाव में पार्टी ने उन्हें अपना प्रत्याशी बनाया और इस बार वे भाजपा के चित्रसेन सिंकु को हरा कर सांसद

बने परन्तु उन्हें 1999 के लोकसभा चुनाव व 2000 के विधान सभा चुनाव में हार का सामना करना पड़ा। स्व. सोय सिंहभूम में आदिवासियों को उनकी पहचान व प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अंतिम समय तक संघर्ष करते रहे। अपने जीवन के अंतिम समय तक वे सामंतवादी शक्तियों, माफियाओं व पूंजीपतियों का पुरजोर विरोध करते रहे। राजनीति की बागडोर संभालने के बावजूद स्व. सोय ने आदिवासी समाज की कुरीतियों का विरोध करना शुरू किया। उन्हेंने आदिवासी पर्व त्योहारों में होने वाले डुबांग नृत्य, रात में होने वाले उत्सव का विरोध किया। उनका मानना था कि इस नृत्य के माध्यम से आदिवासी समाज का शारीरिक शोषण होता है। उन्होंने सरायकेला के तत्कालीन विधायक कृष्णा मार्डी के साथ मिल कर खरसांवा के गितिलता गांव में लगने वाले मेला में डुबांग नृत्य बंद करने का एलान किया। बुधन सिंह हेम्ब्रम ने इसका विरोध किया। अंततः विजय सिंह सोय डुबांग नृत्य को रोकने में सफल रहे। आज रात में होने वाली ये नृत्य पूरी तरह से बंद हो चुके हैं। इस नृत्य को बंद कराने में उन्होंने मारपीट का भी रास्ता अख्तियार किया। उनका कहना था कि आदिवासी मां-बहनों की इज्जत बचाने के लिए अगर उन्हें गुंडागर्दी भी करनी पड़ी तो वे पीछे नहीं हटेंगे। इससे उनकी छवि बाहुबली व दबंग की बनी। इस बीच बुड़ीतोपा गांव के प्रधान हत्याकांड में विजय सिंह सोय को उम्रकैद की सजा हुई। परन्तु उच्च न्यायालय ने उन्हें उस मामले में बरी कर दिया। इस बीच 1985 में सरायकेला जेल में रहकर उन्होंने निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में खरसांवा विधान सभा क्षेत्र से चुनाव लड़ा और खरसांवा के गांधी के नाम से विख्यात नेता देवी लाल, माटी सोय को पराजित कर विधायक बने। उक्त कैद की सजा से बरी होने के बाद अपराध नियंत्रण अधिनियम के तहत उन्हें पुनः गिरफ्तार किया गया।

आदिवासियों के हित में लड़ाई लड़ने में तन,मन एवं धन से काफी संघर्ष किया। उन्होंने आदिवासियों को दिकुओं से शोषण मुक्त करने एवं स्वतंत्रता तथा आजादी की लड़ाई अंतिम समय तक लड़ते रहे। हो जनजाति में सिंहभूम के शेरदिल व दूसरा बिरसा बीर पुरूष ने कई तरह से लड़ाई लड़ी। उन्हें किसी तरह का शोषण के नाम सुन लेने मात्र से उस गंदगी को साफ होना देख लेना चाहते थे। अगर साफ नहीं हुआ हो तो खून खौलने लगता था। शायद भगवान की लीला समझा जाए कि 10 अप्रैल, 2000 को चक्रधरपुर में बिना सुरक्षा के एक कपड़े की दुकान में असामाजिक तत्वों द्वारा 100 चक्र गोलियाँ दाग कर हत्या कर दी गयी। इसके साथ ही आदिवासियों के वीर पुरूष व सिंहभूम का शेर हमेशा-हमेशा के लिए ढेर हो गया। यदि हम उनकी आत्मा की शांति चाहते हैं तो उसके सपनों को पूरा करना होगा। विजय सिंह सोय के विचार को हम आदिवासियों को अपने दिलो दिमाग में रखकर काम करना चहिए।

संदर्भ 1. स्व. सोय के वरिष्ठ पुत्र संजय सिंह सोय से साक्षात्कार द्वारा।

2. प्रभात खबर एवं हिन्दुस्तान एवं दैनिक पत्र-पत्रिकाओं से।

(लेखक-मदिराय गुन्दुवा)

❖❖

अध्याय 4

मान्डो (बागे) सरदार

झारखंड के समीप उड़ीसा राज्य के मानवीर गांव मान्डो सरदार के कारण प्रसिद्ध है। मान्डो के पिता माधो सरदार तथा माता अच्छी सरदार। माधो तथा अच्छी सरदार के तीन बेटों में मान्डो, मधो एवं लेबेया था। मान्डो सरदार का बीर बोल गांव के रायमुनी बिरूवा से प्रेम विवाह हुआ था। उनका इकलौता पुत्र बेरगा एवं बहु सोनामुनी से एक लड़का रघुनाथ तथा बेटियों में फूलमनी एवं रायमुनी। रायमुनी का जन्म 1942 में हुआ था जो कि अब तक जीवित है। 65 वर्ष होने के बावजूद स्वस्थ एवं तंदुरूस्त हैं। रायमुनी सिर्फ फल और दूध ही पीती हैं। फूलमनी की शादी हो गयी थी लेकिन रायमुनी अविवाहित है। बड़े बेटे रघुनाथ का मैट्रिक की पढ़ाई के दौरान ही मृत्यु हो गयी।

मान्डो तीन भाईयों में सबसे ज्यादा खाना खाता था और काम में आलसी था। बहुत जिद्दी होने के कारण वह किसी का बात नहीं सुनता था। इसलिए पिताजी बहुत गाली एवं डांटते रहते थे। एक बार की बात है किशोर अवस्था में ही उसके पिता द्वारा गाली देने पर दुखी होकर मयूरभंज की ओर जंगल से होकर जाने लगा था कि जंगली बीहड़ संकट रास्ते में आदमी पूजा करने वाले पुजारियों ने मान्डो को मारने के लिए घेर लिया। मान्डो का शरीर 8 फीट ऊंचा एवं अधिक मोटा होने के कारण बहुत देर तक उन पुजारियों ने उनको देखा। पुजारियों द्वारा हथियार उठाने पर मान्डो ने झुककर पुजारी का पैर पकड़कर हाथ से हवा में पंखा की तरह घुमा कर जमीन पर रख दिया। यह देख सभी पुजारी अपनी जान बचाने के लिए भाग खड़े हुए। 12वर्ष की आयु में ही मान्डो को अपने शक्ति की अनुभूति हो गयी थी। यह खबर मयूरभंज के राजा को मालूम हुआ। राजा ने अपनी पुलिस को मान्डो के गांव भेज दिया। उस दिन संयोग से वे रास्ता किनारे ही बकरियाँ चरा रहे थे।

मान्डो सरदार रास्ता किनारे ही बड़ा सा इमली पेड़ के डाली को झुकाकर बकरियों को पत्ती खिला रहे थे। उसी समय पुलिस वालों ने मान्डों से पूछा कि मान्डो का घर किधर है हम लोगों को बता दो उनसे मिलना है। राजा ने हमें भेजा है। मान्डो ने जबाव दिया वह जो दिखाई दे रहा है वहीं पर मिलेगा। पुलिस ने कहा जाओ तुम्हीं बुला कर लाओ। मान्डो ने कहा ठीक है हम जायेंगे एक शर्त पर जब तक हम लौट नहीं आते तब तक इस इमली पेड़ की डाली को मेरी तरह झुकाकर रखना होगा ताकि बकरियों का पेट भर सके। पुलिस

ने कहा ठीक है। डाली को पुलिस के हाथों जैसे ही पकड़वाये और अपने हाथ हटाये त्योंही सभी पुलिस वाले ऊपर पेड़ पर लटक गये। आधे पुलिस गिर भी गए। गुस्सा से पुलिस ने कहा यह ठीक नही, हम लोगों को नीचे उतारो। मान्डो ने ऊपर लटके पुलिस को उतारकर उपना असली परिचय दिया कि मैं ही मान्डो सरदार हूँ। पुलिस ने कहा कि राजा तुम्हें देखना चाहते हैं। इसलिए बुलाया है। मान्डो ने कहा ठीक है हम बाद में जायेंगे आप लोग जाते रहिए। मान्डो सरदार ने मयूरभंज राजा के महल में प्रवेश करते ही देखा कि अखड़ा में पहलवानी की प्रतियोगिता हो रही है। पैदल चलने के कारण पसीना से लथपथ है इसीलिए एक पहलवान साथी को लेकर नदी में नहाने के लिए चल दिये। मान्डो की आदत थी कि नहाने के लिए जाने पर एक मुट्ठी सरसों साथ में लेते जाते। उसके साथी पहले ही नहा चुके थे। मान्डो सरदार बाद में नहाये। नहाने के बाद एक मुट्ठी सरसों के बीज को हाथ से दबाकर तेल निकाला और अपने शरीर में लगाया। यह देख साथी पहलवान आश्चर्यचकित व दंग रह गये। नहाने के बाद महल में प्रवेश किया ही था कि उसकी बारी आ गयी। जिस पहलवान से भिडंत था उसने अपना शरीर का पहलवानी दिखा-दिखा कर अखड़ा में प्रवेश किया। मान्डो बिना कुछ बोले प्रसन्नचित मुद्रा में ज्यों ही हाथ मिलाया दूसरे पहलवान के हाथ से खून निकलना शुरू हुआ। यह देखकर प्रतियोगिता शुरू होने से पहले ही दूसरे पहलवान हार मान गए। राजा ने यह देखकर 'मान्डो बागे' को मान्डो सरदार की उपाधि दी और राजा ने चेतावनी दिया कि आईन्दा तुम किसी से नहीं लड़ोगे। इस बात की खबर गांव वालों को नहीं थी। किसी के द्वारा गांव वालों को यह खबर मिली की मान्डो बहुत ताकतवर है। एक दिन गांव वालों ने शक्ति परीक्षण करने के लिए योजना बनायी। गांव वालों ने अपने-अपने भैंसे व गाड़ी के साथ मान्डो सरदार को भी जंगल से लकड़ी लाने के लिए बुलाया। जंगल पहुंचने पर सभी ने अपने-अपने बैलगाड़ी में लकड़ी लादना शुरू किया। योजना स्वरूप मान्डो के भैसों को जंगल से बाहर खेद दिया गया। सभी अपने -अपने बैलगाड़ी मे लकड़ी लाद-बांधकर भैसों को बांधना शुरू किया और मान्डो को कहा कि तुम्हारा भैंसा तो किधर भाग गया जाओ ढूँढ़कर लाओ। हम लोग तुम्हारा इन्तजार नहीं करेंगे। इसलिए हमलोग अपना गाड़ी लेकर जा रहे हैं, इतना कहकर वे चले गए। मांडो ने अपना दिमाग लगाया कि गांव वाले मेरी ताकत का परिचय लेना चाहते हैं। बैलगाड़ी में उन लोगों से भी अधिक लकड़ी लादा और पूरा जोर से बांध कर, दोनों भैंसा को खोजे बगैर ही अपने हाथ से गाड़ी को जंगल से खींचना शुरू किया। मान्डो रास्ता को छोड़कर उबड़-खाबड़ एवं खेतों के आड़ को पार करते हुए उन लोगों से पहले घर पहुँच गए।यह देखकर उनकी ताकत का परीक्षा लेने वाले शर्म से पानी-पानी हो गए।

मान्डो सरदार का जैसा ताकत था,भोजन की मात्रा भी वैसा ही था। मांडो के भोजन की मात्रा एक बार में 60 लोगों के खाना के बराबर था। गांव वालों ने उनके खाने का भी परीक्षा लिया। यह मौका भी किसी शादी के अवसर का था। शादी होने के बाद भोज खाने के लिए मांडो को बैठने के लिए कहा गया। मांडो ने कहा नहीं हम तो गांव के हैं, मेहमान

व बन्धुओं को पहले खिलाओ। गांव वालों के बीच उसकी एक न चली और कहा गया कि आपको खिलाने के बाद ही मेहमान को खाना खिलाएंगे। मान्डो समझ गये कि शायद गांव वाले उनके खाने का भी परीक्षा लेना चाहते हैं। मान्डो हाथ धोकर खाना खाने बैठ गये। मांडो बारातियों का पूरा खाना भी खा गये। इस परीक्षा में भी गांव वालों का मुँह लटक कर रह गया।

मांडो की यह शक्ति ईश्वरीय वरदान व प्राकृतिक था। किसी जादू टोने का शक्ति नहीं था। मांडो के विषय में जितना कहा व लिखा लाए कम है क्योंकि मांडो आदिवासी हो जनजातियों के बीच में जबतक सूरज चांद रहेगा, राम लक्ष्मण की तरह उनकी शक्ति को याद किया जायेगा और उनकी शक्ति को पूजा जायेगा।

संदर्भ : पुत्री रायमुनी के अनुसार
(लेखक-मदिराय गुन्दुवा)

❖❖

अध्याय 5

जोरों जितिकर गंगाराम

चार अप्रैल, 1982 रात्रि तीन बजे के लगभग जिला मुख्यालय चाईबासा से 15,16 गाड़ियों का काफला मंझारी की ओर जाने वाली सड़क पर निकला। उसमें जीप, ट्रक और बसों की भरमार थी। सभी में पुलिस के जवान भरे हुए थे। यह लश्कर न तो किसी युद्ध में जा रहा था और न किसी दंगा फसाद वाले इलाके में। इतने सारे जवानों एवं गाड़ियों का काफिला चला था एक जवान को गिरफ्तार करने के लिए। जी हां, सेवा निवृत्त वीर सूबेदार गंगाराम कालुन्डिया को। सबसे ज्यादा आश्चर्यचकित करने वाली बात यह थी कि जिस जवान को रात के अंधेरे में घेर कर पकड़ने का अभियान चलाया गया था उस जवान को उत्कृष्ट सेवा एवं युद्ध में वीरता के लिए तत्कालीन राष्ट्रपति पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया था। सेना से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात सूबेदार गंगाराम अपने गांव क्षेत्र के लोगों की आर्थिक, शैक्षणिक हालात को अन्य राज्य के लोगों से तुलना करते और अपने लोगों की बदहाली से काफी बेचैन एवं उदास हो जाते। उन्हें कलकत्ता की एक कंपनी से सहायक सुरक्षा अधिकारी हेतु नियुक्ति पत्र प्राप्त हुआ पर उन्होंने उसे त्याग कर अपने इलाके के ग्रामीणों में जागरूकता पैदा करने का मिशन हाथ में लिया। उस दौरान सिंहभूम में बहुद्देशीय परियोजना इच्छा खरकई बांध बनाने हेतु सरकारी स्तर से विभागीय कार्रवाई आरम्भ हुई और उस परियोजना के अंतर्गत सिंहभूम जिले के आदिवासी बहुल क्षेत्र के कई एक गांवों में विस्थापन की बात उठी। गंगाराम का गांव भी विस्थापन सूची में था। उस इलाके के लगभग सभी गांव चिन्हित किए गए थे। विस्थापन की कल्पना से ही लोग चिन्तित एवं अशांत हो गए थे। गंगाराम ने नेहरू जी के पंचशील का अध्ययन किया था जिनमें नेहरूजी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा था- आदिवासी क्षेत्र को परियोजनाओं के नाम पर विस्थापित नहीं किया जाना चाहिए। चूंकि आदिवासियों की जीवन शैली, संस्कार, परम्परा प्रकृति से जुड़ी होती है। अतः इनके विस्थापन का मतलब है इनकी संस्कृति और परम्परा का नुकसान करना। अतः गंगाराम ने बांध के विरोध में आवाज बुलंद की। उनके नेतृत्व में गांव-गांव के लोग संगठित होने लगे। अधिग्रहण हेतु जमीन मापी-नापी करने वाले कर्मचारी और अधिकारियों को खदेड़ा जाने लगा। बिरसा भगवान द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ किए गए विद्रोह एवं संगठन के तर्ज पर ग्रामीण संगठित हो गए। नगाड़ों की आवाज से लोग तुरंत एकत्रित

हो जाते। एक गांव में नगाड़ा बजते ही दूसरा गांव उस ध्वनि को तीसरे गांव के लोगों तक अपने नगाड़ों से पहुंचाते और यह सिलसिला चलता रहा। इस तरह लोग अपने पुरकौती जमीन से विस्थापन के खिलाफ संगठित हो गए। शहीद गंगाराम का कहना यह था कि अगर सरकार किन्हीं राष्ट्रीय योजना के तहत अधिग्रहण करती है तो यहां के लोगों को पहले बसाने की व्यवस्था करे। रहने के लिए मकान की व्यवस्था हो और तब मुआवजा की बात हो। सिर्फ मुआवजा की रकम देकर गरीब अनपढ़ आदिवासियों को विस्थापित किया जाना, बंदर के हाथ में सोने का आभूषण थमाने जैसा होगा। गंगाराम के तर्क में सच्चाई था। वे अपने लोगों आदिवासियों की हैसियत एवं आदतों को जानते थे। वे यह भी जानते थे कि विस्थापित आदिवासियों को अगर परियोजना में नौकरी मिलती है, तो चपरासी का ही मिलेगा। अतः विरोध होता गया और प्रशासन वस्तुस्थिति को समझने का प्रयास न कर परियोजना में प्राप्त राशि को व्यय करने में ज्यादा तत्परता एवं दिलचस्पी ले रहा था। अन्ततः गाड़ियों के कफिले के बरकुन्डिया गांव के समीप से गुजरते ही ग्रामीणों ने नगाड़ा बजाकर सांकेतिक सूचना प्रचारित की। गांव के लोगों ने गंगाराम को गिरफ्तारी से बचने और गांव से भागने का सुझाव दिया पर वीर गंगाराम का जवाब था अपनी जमीन, अपना घर, अपना गांव छोड़कर भागना हास्यप्रद होगा, सबसे मूर्खता होगी, कायरता होगी। गंगाराम घर से आंगन में निकला ही था कि पुलिस के लोगों ने निहत्थे गंगाराम पर गोली चला दी। गोली जांघ पर लगी थी। बेचारा निर्दोष गंगाराम खून से लथपथ हो गया था। पुलिस बेरहमी से उसे घसीटती हुई गाड़ी तक ले गई थी।

गोली चलने की आवाज ने ग्रामीणों को बेचैन और सशंकित कर दिया। हजारों की संख्या में एकत्रित हो ग्रामीणों ने अफरा-तफरी में तुजबाना और कान्दा मान्दा पहाड़ी के समीप लश्कर को चारो ओर से घेर लिया। सड़क पर बड़े-बड़े पत्थरों को डाल कर जाम किया गया। ग्रामीणों में अफवाह फैल गई थी कि गंगाराम को गोली से भून दिया गया है। उसके बाद और क्या था, पुलिस पर ग्रामीणों ने हमला बोल दिया। चारो ओर से पथराव किया जाने लगा। भीड़ में बच्चे, बूढ़े, पुरूष एवं महिलाएं सभी सक्रिय थे। सूर्योदय हो चुका था। प्रतिनियुक्ति मजिस्ट्रेट पुलिस के जबरदस्ती करने के बावजूद गोली चलाने का आदेश नहीं दे रहे थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनके आदेश देते ही हजारों ग्रामीणों की जान जा सकती थी। अन्ततः समझदार मजिस्ट्रेट चुपचाप वहां से रफूचक्कर हो गए। पांच छः घंटों के पश्चात वरीय प्रशासनिक अधिकारियों के हस्तक्षेप से पुलिस का लश्कर वहां से निकलने में सफल हुआ। घायल गंगाराम की पुलिस ने काफी बेरहमी से हत्या कर डाली। अंग्रेज सरकार ने भी शायद सिंहभूम में ऐसा जुल्म नहीं किया पर आजाद हिन्दुस्तान के सिपाहियों ने राष्ट्रपति पदक प्राप्त वीर गंगाराम को अपने अधिकारों की मांग करने, गरीब ग्रामीण किसानों को संगठित करने वाले गंगाराम की हत्या कर दी। उसके पश्चात घड़ियाली आंसू बहाते हुए प्रशासन ने गंगाराम की इकलौती पुत्री को अनुकम्पा के आधार पर चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी का नियुक्ति पत्र थमा दिया। कोल्हान क्षेत्र के लोगों ने गंगाराम को शहीद मान लिया है।

(लेखक-घनश्याम गागराई)

❖❖

अध्याय 6

नारायण जोंको

पश्चिमी सिंहभूम में हो जनजाति की बहुलता है। हो जाति की बहादुरी, रण कौशलता को अंग्रेज भी मानते थे। पश्चिमी सिंहभूम के जिला मुख्यालय चाईबासा से उत्तरी छोर पर ओटार गांव स्थित है। नारायण जोंको का जन्म ओटार गांव में हुआ था।

नारायण जोंको के पिता का नाम स्व. सदन जोंको था। इनके दो भाई थे। एक का नाम गोमिया जोंको और दूसरे का नाम कैरा जोंको था। स्व. नारायण जोंको 1959 ई. से अनुमंडल पदाधिकारी के कार्यालय में प्रधान लिपिक के पद पर कार्यरत थे।

किन्तु 1980 ई. में गुवा गोली गांड को देखकर विचलित हो गये। आपने प्रधान लिपिक पद से इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देने के पश्चात ये कोल्हान रक्षा संघ में प्रधानमंत्री पद के लिए नामित किये गये। प्रधानमंत्री पद को उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। कोल्हान रक्षा संघ का प्रधानमंत्री बनते ही लंदन मुकदमा के लिए चले गये। उस समय स्व. इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री थी। स्व. नारायण जोंको इंदिरा गांधी के विरोध में लंदन में मुकद्दमा दायर किया था।

"कोल्हान रक्षा संघ" हो आदिवासियों का सर्वप्रथम भारतीय सरकार थी। संघ ने अंग्रेजों के खिलाफ न जाने कितनी लड़ाईयां लड़ी। परन्तु हो आदिवासी का संघ कोल्हान रक्षा संघ याने कोल संघ ही अंग्रेजों को पानी पिलाया था।

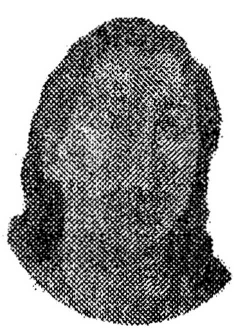
स्व. नारायण जोंको की पत्नी चांदमनी जोंको थी। इनके तीन पुत्र हुए पहले का नाम कुँवर सिंह जोंकों दूसरे का नाम मोरन सिंह जोंको और तीसरे पुत्र का नाम विशाल जोंको था। इनके दो पुत्रियाँ हैं टेपसी और गोलंची। 10.10.1998 को इनका देहान्त हो गया।

लेखक– बहेरा गागराई/डॉ. दमयन्ती सिंकु

❖❖

अध्याय 7

शहीद पोटो 'हो सरदार'



1857ई० के स्वतंत्रता संग्राम को जो लोग भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम स्वीकारते हैं उनका ध्यान मैं बिहार राज्य के सुदूर दक्षिण में घने जंगलों एवं पहाड़ियों की किलाबन्दी में बसे सिंहभूम जिले के लड़ाका कोल जनजाति के पोटो के नेतृत्व में हुए उस विद्रोह की ओर ले जाना चाहूँगा जिसने सर्वप्रथम अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे।

सिंहभूम जिले की जिस कोल आदिवासी जनजाति के विद्रोह की मैं यहाँ चर्चा करने जा रहा हूँ उन्हें 'हो' कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'मानव' । लड़ाका कोल तो इनकी लड़ाकू प्रवृत्ति देखकर अंग्रेजों ने कहना प्रारंभ किया था। वास्तव में अपने नाम के अनुरूप ही उनके यहाँ सभी मानव समान हैं और इनमें न कोई शासक है न कोई शासित। यही कारण है कि इस जनजाति का आज तक न तो कोई अपना राजा हुआ न यह किसी अन्य राजा के अधीन रही। शायद इसीलिए जब 1773 ई० तक छोटानागपुर के अन्य क्षेत्रों पर ईस्ट इंडिया कंपनी का सिक्का जम चुका था तब भी सिंहभूम पर अंग्रेजों के पाँव टिक भी न सके थे। नाममात्र के लिए पोड़ाहाट, सरायकेला और खरसवां जैसी देशी रियासतों की सत्ता अवश्य थी पर 'हो' जनजाति ने इनकी अधीनता कभी भी दिल से स्वीकार नहीं की।

यद्यपि 1837 ई० मे यह क्षेत्र ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन हो गया पर इसके लिए अंग्रेजों को नाको चने चबाने पड़े और अपनी सत्ता कायम रखने के लिए आगजनी, लूटपाट एवं मृत्युदंड जैसे घृणित दमनकारी हथकंडों का सहारा लेना पड़ा। यहाँ की जुझारु हो जनजाति 1821 ई० के विद्रोह (Ho Rebellion) 1831-32 को छोटानागपुर के कोल विद्रोह (Kol Insurection) में अंग्रेजो को छट्ठी का दूध याद दिला चुकी थी। अतः हो जनजाति को पूर्णतः ध्वस्त करने और सिंहभूम पर अपना शिकंजा दृढ़ करने के उद्देश्य से 1836-37 ई० के बीच एक नयी सामरिक नीति के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी के पदाधिकारियों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण की योजना बनायी । गवर्नर जनरल के एजेन्ट कैप्टन

विलकिन्सन ने इस क्षेत्र के लोगों को अधीन करने के उद्देश्य से पीड़ (कई गांवों का समूह) के प्रधान 'मानकी ' एवं 'मुण्डा' (गांव का प्रधान) को अपना कूटनैतिक मोहरा बनाने का प्रयास किया। उनकी यह चाल भी कामयाब न हो सकी क्योंकि 'थाई' और 'भरभरिया' पीड़ इनकी चाल में न फंसकर लगातार छापामार आक्रमण द्वारा अंग्रेजी सत्ता को चुनौती देते रहे।

अतः इनके (हो) जुझारू तेवर को देखकर कैप्टन विलकिन्सन ने एक सुदृढ़ सैन्य अभियान की योजना बनायी और कैप्टन कोरफील्ड को थाई पीड़ की पवित्र भूमि पर जुल्म के तांडव का काम सौंपा। अनेक गांव नष्ट कर डाले गए। घरों और पशुओं को जला डाला गया। अंग्रेजी जुल्म से भयाक्रांत हो पीड़ के कुछ लोगों ने आत्मसमर्पण भले ही कर दिया पर अधिकतर अब भी अंग्रेजी सत्ता से स्वयं को मुक्त रख पाने में समर्थ थे, और अंग्रेजों से लोहा लेने का हौसला रखते थे। इस युद्ध प्रिय जनजाति के हौसलों की बुलन्दी देखकर विलकिन्सन ने रामगढ़ लाईट इन्फेन्टरी को आमंत्रित किया जिससे कैप्टन लारेन्स के नेतृत्व में पुनः आतंक का एक दौर चला और हैवानियत के आगे इन्सानियत को घुटने टेकने पड़े। तत्पश्चात् भरभरिया पीड़ को भी निशाना बनाया गया और संघर्ष के बाद यह भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के दानवी शिकंजो में जकड़ा गया। इसी प्रकार एक के बाद एक वर्तमान कोल्हान क्षेत्र में स्थित छब्बीस पीड़ कंपनी सत्ता के अधीन होते चले गये। इस प्रकार फरवरी 1837 ई. तक बामनघाटी और सिंहभूम के हो जनजाति बहुल क्षेत्र को अंग्रेजों ने अपने आधीन कर साउथ बेस्ट फ्रन्टियर एजेन्सी का एक हिस्सा बना लिया और इस प्रशासकीय नवनिर्मित इकाई का नाम 'कोल्हान' रखा, जिसके प्रथम प्रशासक लेफ्टिनेंट टिकेल नियुक्त हुए।

यद्यपि शक्ति और कूटनैतिक चालों के सहारे सिंहभूम की भूमि पर अंग्रेजों का आधिपत्य 1837 ई. तक कायम हो चुका था तथापि इस क्षेत्र के हो जनजाति के दिलों पर उनकी सत्ता कभी भी स्थापित न हो सकी और विद्रोह की आग धीरे-धीरे इनके दिलों में सुलगती रही जो राजाबासा पीड़ के पोटो जैसा कुशल नेता का नेतृत्व पाते ही भयंकर ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ी।

इस विद्रोह मे पोटो के अतिरिक्त उसके अन्य प्रमुख सहयोगी थे बालन्डिया का बोड़ा डीबे, पड़सा ग्राम के पोटेल, गोपाली, पन्डुवा, नारा, बड़ाय एवं इनके बीस-पच्चीस साथी पर शीघ्र ही किशुनपुर (राँची) जेल से छोड़े हुए कुछ अन्य लोग भी इस संग्राम में शामिल हो गए। फिर क्या था कोल्हान का एक सशक्त शहीदी जत्था अंग्रेजों को इस क्षेत्र से बाहर खदेड़ने के लिए तैयार हो गया जो घने जंगलो में गुप्त सभाएं करने के लिए भावी रणनीति तय करता था प्रायः जनन्नाथपुर के निकट पोकम ग्राम में इनकी गुप्त सभाएं हुआ करती थी। धीरे-धीरे इस क्षेत्र के अन्य लोग भी स्वतंत्रता का मूल्य समझकर इनके जत्थे में सम्मिलित होने लगे और कुछ ही दिनों में लालगड़ आंवला और बढ़पीड़ सहित लगभग 22 गांवों के लोगों ने अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध खुले विद्रोह की घोषणा कर दी। शीघ्र ही इस आंदोलन ने एक सजग आंदोलन का रूप ले लिया और देखते-देखते न केवल सम्पूर्ण कोल्हान बल्कि सरायकेला से लेकर उड़ीसा के क्योंझर जिले तक फैल गया।

पोटो के अतिरिक्त इस आंदोलन में बड़बिल (उडीसा) के 'मांगुनी नायक' की भूमिका भी अत्यन्त सराहनीय रही। जिसके सम्बंध में यह धारणा प्रचलित थी कि वह कुछ विशिष्ट अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न था और तंत्र-मंत्र आदि में आस्था रखता था। अतः उसने संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए कुछ अनुष्ठान भी किए और सम्पूर्ण क्षेत्र के लोगों को पोटो के नेतृत्व में अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ विद्रोह करने को प्रेरित किया। फलस्वरूप बालन्डिया का नारा एवं टोपाये, सरबिल का कोचे और बरदान तथा पाटा डुमरिया का पान्डुआ, जोटो तथा जोंको जैसे दुर्दान्त योद्धा भी इस संग्राम में कूद पड़े जिनके अविर्भाव से इस आन्दोलन को एक नई शक्ति प्राप्त हुई। इस सम्पूर्ण क्रांति को पोटो जैसे नेताओं ने घने जंगल में रहकर संचालित करने के साथ-साथ इसे नई दिशा प्रदान की और समय की नाजुकता एवं मांग को देखकर पोकम ग्राम से हटकर भरभरिया के निकट बालन्डिया नामक ग्राम में आन्दोलनकारियों के गुप्त केन्द्र की स्थापना हुई जहाँ समय-समय पर गुप्त सभाएं हुआ करती थीं। इन्हीं सभाओं में लिए गये कुछ महत्वूपर्ण फैसले हैं-

1. अंग्रेजों द्वारा कोल्हान पर आक्रमण करने के कारण जिस कोल्हानवासी के स्वजनों की मृत्यु हो गयी अथवा जिसके गांव या घर जला दिए गये हैं उसका अंग्रेजों से बदला लेना,
2. सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सेरेंगसिया और बागबिला घाटियों को अपने अधिकार में करना,
3. समस्त अंग्रेजों एवं अन्य विदेशियों को कोल्हान क्षेत्र से बाहर खदेड़ना और
4. इस क्षेत्र के अन्य लोगों को अपने संघर्ष में सम्मिलित होने तथा विदेशी दुश्मनों को मार भगाने का निमंत्रण देने हेतु दावतनामे के रूप में हर गांव में तीर भेजना।

कहना न होगा कि कोल्हान के इस सुसंचालित एवं सुसंगठित सशक्त विद्रोह ने अंग्रेजों की नींद हराम कर दी। अतः तात्कालिक वायसराय के एजेन्ट कैप्टन विलकिन्सन ने पोटो एवं उसके सहयोगियों की गिरफ्तारी करने में मदद करने वालों के लिए इनाम की भी घोषणा की। पर किसी को भी पोटो को गिरफ्तार करने का साहस न हुआ। लाचार होकर अंग्रेजों को गोली-बारूद से लैस हिंसक सेना का सहारा लेना पड़ा और 12 नवम्बर, 1837 को कैप्टन विलकिन्सन आ धमका। विस्तृत छानबीन के उपरांत उसने युद्ध की नवीन योजना बनायी तथा 17 नवम्बर, 1837 को कैप्टन आर्मस्ट्रोन 400 सशस्त्र सैनिकों को, 60 घुड़सवारों और दो गनों के साथ बाड़ पीड़ की ओर रवाना हुआ। पर आंदोलनकारियों की शक्ति से अंग्रेज इतने भयभीत थे कि उन्हें अपनी यह तैयारी भी अधूरी जान पड़ी। अतः उन्होंने बाड़ पीड़ कूच करने के क्रम में सरायकेला के कुंवर की 200 पाइको की सेना भी अपने साथ ले ली। और बांकुड़ा के एक सैन्य जत्थे को भी तैयार रहने का आदेश दिया।

अपने अभियान के आरम्भ में अंग्रेजी सेना को किसी भी प्रकार के विद्रोह का सामना नहीं करना पड़ा क्योंकि आंदोलनकारियों की अंग्रेजो को घने जंगलों के भीतर घेर कर

छापामार लड़ाई लड़ने की योजना थी। अतः जब 19 नवम्बर, 1837 को सेरेंगसिया घाटी में अंग्रेजी सेना पहुँची तब अचानक उन्हें तीरों की तेज बौछार झेलनी पड़ी । दोनों ओर पहाड़ों से घिरी घाटी के बीच में होने और जंगली रास्तों से परिचित न होने के कारण अंग्रेजी सेना को इस युद्ध में भारी क्षति उठानी पड़ी। उनके 13 घुड़सवार घायल हुए और अनेक अकाल की मृत्यु के गाल में समा गए। अपनी यह पराजय देखकर कैप्टन विलकिन्सन ने रणनीति में परिवर्तन किया और अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से तेराई के मानकी बालसिंह से सौ पाइक की मांग करने के साथ ही केरा जमींदार एवं खरसावां के ठाकुर से भी सेना की मांग की। इस प्रकार सैन्य शक्ति सम्पन्न होकर पुनः 20 नवम्बर, 1837 ई. को कैप्टन विलकिन्सन ने सरदार पोटो के ग्राम राजाबासा पीड़ को जला कर खाक कर डाला। इतने पर भी अंग्रेजों ने आक्रमण किया और पोटो के पिता एवं छह पाइको को गिरफ्तार कर लिया। पर पोटो अब भी उसके चंगुल से बच निकला। क्रुद्ध होकर अंग्रेजी सेना ने राजाबासा पीड़ का दानवी क्रोध शांत न हुआ तब उन्होंने मात्र विद्रोहियों के छिपे होने के संदेह पर 100 सिपाहियों और 50 घुड़सवारों को लेकर लड़ांगहातू पर धावा बोला और पूरे गांव को खाली देखकर उनका क्रोध गांव में बची आठ औरतों को गिरफ्तार कर तथा एक पुरूष और एक बच्चे के खून से प्यास बुझाकर शांत हुआ। इधर अंग्रेजों के आक्रमण की खबर पाते ही स्वतंत्रता संग्रामियों ने जयपुर एवं रूइया गांव के बीच मोर्चा संभाला और अंग्रेजों का डटकर मुकाबला करने की योजना बनाई पर न जाने यह खबर अंग्रेजी आक्रांतों को किस अज्ञात स्रोत से प्राप्त हो गयी। उन्होंने तुरन्त अपनी रणनीति में परिवर्तन कर जुझारू स्वाधीनताप्रिय सैनिकों को चारों ओर से घेर कर शिकस्त देने का निश्चय किया और लेफ्टिनेंट टिकेल ने जयपुर में तथा कैप्टन आर्मस्ट्रॉग और लेफ्टिनेंट सिम्सन के नेतृत्व में रामगढ़ बटालियन के 300 सैनिकों ने रूइया और नाजोमलोर को ध्वस्त कर दिया पर विद्रोही अब भी उनकी पकड़ से बाहर थे। अतः पुनः अंग्रेजों को अपनी पुरानी कूटनीति चाल का सहारा लेना पड़ा और अनेक देशद्रोहियों को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया तब कहीं जाकर अंग्रेज अपनी मातृभूमि के उन वीर सपूतों को पकड़ने का सघन अभियान छेड़ पाने में सफल हुए। अपने भाइयों की गद्दारी से बोड़ा,नरा, बड़ाय और पन्डुआ जैसे बहादुर अंग्रेजों की गिरफ्त में आ गए। इतना ही नहीं, इस स्वाधीनता संग्राम का नेता पोटो और उसका सहयोगी डीबे भी 8 दिसम्बर, 1837 ई. को पकड़ा गया।

तत्कालीन साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेन्सी का एजेन्ट विलकिन्सन इस सत्य से भलीभांति परिचित था कि यदि पोटो और डीबे जैसे स्वतंत्रता प्रेमी बहादुर जीवित रहे तो वे सिंहभूम पर कभी भी स्थायी रूप से टिक नहीं सकेंगे। अतः उसने सरकार से विद्रोहियों पर मुकदमा चलाने और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें मृत्युदंड तक देने के अधिकार की मांग की। उसकी यह मांग स्वीकृत भी हो गयी। अधिकार प्राप्त करते ही विलकिन्सन ने अविलम्ब 18 दिसम्बर 1837 को जगन्नाथपुर में ही आंदोलनकारियों पर मुकदमा चलाया जो 25 दिसम्बर

1837 को समाप्त हुआ और 31 दिसम्बर को उसका फैसला भी सुना दिया गया। जिसके अनुसार पोटो, बोड़ा पन्डुआ,नारा और बड़ाय को मृत्युदण्ड तथा उनके अन्य सहयोगियों को नाना कारणों से कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। जनसमूह को आतंकित करने के उद्देश्य से 1 जनवरी, 1838 ई. को विशाल जनसमूह के समक्ष पोटो, नारा और बड़ाय को जगन्नाथपुर में तथा 2 जनवरी, 1838 को प्रातः सेरेंगसिया ग्राम में बोड़ा और पन्डुआ को फांसी पर चढ़ा दिया गया।

इन पांच मातृभूमि के सपूतों की बलि के साथ ही सिंहभूम का यह स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजों के द्वारा कुचल डाला गया पर इसकी चिंगारी भीतर ही भीतर सुलगती रही। समय-समय पर सुसुप्त ज्वालामुखी की तरह प्रकट भी होती रही जिसके चिन्ह इतिहास के पन्नों में आज भी देखे जा सकते हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि सिंहभूम विशेषकर कोल्हान क्षेत्र के इस स्वतंत्रता संग्राम को कुछ अंग्रेजी दस्तावेजों में चारों ओर लुटेरों का विद्रोह घोषित कर इसकी महत्ता को घटाने का प्रयास किया गया है। पर इस संग्राम की व्यापकता और महत्ता इसी एक तथ्य से प्रमाणित हो जाती है कि 1 जनवरी, 1838 ई. के पूर्व सम्पूर्ण छोटानागपुर में किसी को भी फांसी की सजा नहीं दी गयी थी । इसके अतिरिक्त यह संग्राम अनेक क्षेत्रों में अपने परवर्ती स्वाधीनताप्रिय वीरों के लिए पथ प्रदर्शक भी माना जा सकता है। इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की रणनीति बनाई गई और बाबू कुंवर सिंह आदि ने अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिए।

साभार – अखिल भारतीय 'हो' सभा, जमशेदपुर

❖❖

अध्याय 8

‘ हो’ वीर घासी सिंह

राजधानी में गणतंत्र दिवस पर चमकीले वस्त्र पहन कर जब राजपथ पर देश के विभिन्न भागों से आए वनवासियों की नाचती-गाती टोलियाँ जनता के सामने से निकलती हैं तब क्या हमने इस बात की कल्पना भी की है कि इनमें उन लोगों की सन्तान भी हैं जिन्होंने सन् 1857 ई0 के स्वतंत्रता -संग्राम से पहले ही इस भूमि पर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे। स्वतंत्रता के इन्हीं प्रथम आराधकों में है सिंहभूमि की ‘ हो’ जनजाति।

अंग्रेजों के साथ इस जनजाति का पहला सम्पर्क सन् 1760 में हुआ जब मीर कासिम ने बंगाल की गद्दी मिलने के बदले मेदिनीपुर का इलाका ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया था। उन दिनों छोटानागपुर मेदिनीपुर का अंग था। इस भाग को अपने अधिकार में लेने की इच्छा मेदिनीपुर के अंग्रेज रेजीडेंट की हुई और उसने फर्ग्युसन के नेतृत्व में फौज की टुकड़ी रवाना कर दी। सन् 1813 तक सिंहभूम जिले को छोड़कर सारा छोटानागपुर अंग्रेजों के अधीन हो चुका था।

आक्रमण

हालांकि यहाँ के राजा ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया था। लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सन् 1818 में सिहंभूम को पूरी तरह अपने अधिकार में लेने की ठान ली। उस समय मराठा शासक की सीमा में उड़ीसा भी शामिल था। इसका कारण सम्बलपुर से बंगाल तक सीधा सम्पर्क स्थापित करना और कटक को वाराणसी से, जो उस समय अंग्रेज साम्राज्य की पश्चिमी सीमा थी, जोड़ना था। जैसा कि कम कह चुके हैं सिहंभूम का राजा अंग्रेज सरकार के अधीन स्वेच्छा से स्वार्थ-सिद्धि के लिए आ गया था, लेकिन खरसावां के ठाकुर चेतन सिंह और सरायकेला के कुंवर विक्रम सिंह बिलकुल भी तैयार नहीं थे। ये सभी आपस में एक -दूसरे के सम्बन्धी थे। सिंहभूम के राजा ने अंग्रेजों के साथ फरवरी ,1820 को एक समझौता किया। चूँकि सिंहभूम का राजा इस जनजाति के लोगों को, जो पिछले पचास वर्षो से भी अधिक समय से स्वतंत्र चले आ रहे थे स्वतंत्र नहीं देख सकता था। इसलिए अंग्रेजों को इस जनजाति के लोगों पर आक्रमण करने का एक बहाना मिल गया। अंग्रेजों ने पोड़ाहाट के राजा और अन्य स्थानीय राजाओं से मिलकर इस

जनजाति पर आक्रमण कर दिया और यह दोष लगाया कि यह जनजाति लूटमार व हत्याएँ करने वाली जनजाति है। इस जनजाति को अपने अधीन करने का एक और कारण जैक्सन रोड का निर्माण करना था जो बंगाल को मद्रास से जोड़ती है। इधर इस जनजाति के लोगों को किसी भी अन्य व्यक्ति का अपनी सीमा में प्रवेश सहन नहीं था। इस आक्रमण का नेतृत्व मेजर रफसेज ने किया था। मेजर रफसेज और उसकी सेनाओं के प्रवेश का उद्देश्य वहाँ की जनजातियों का राजा के प्रति आत्मसमर्पण करवाना बताया गया। ये अंग्रेजी सेनाएं जब चाईबासा पहुँची तब इन लोगों का विद्रोह भड़क उठा। इस दौरान ये लोग बांध को नष्ट कर चुके थे, जिससे पीने के लिए पानी मिलना कठिन हो गया। मेजर रफसेज की सेनाओं को इन जनजातियों ने घेर लिया और अपने क्षेत्र से भगा दिया था। मेजर रफसेज की सहायता के लिए लेफ्टीनेंट मेलर्ड को आक्रमण करने का आदेश मिला लेकिन इस वीर ' हो ' जनजाति ने उसे और उसकी सेनाओं को रास्ते में ही रोक लिया। दोनों ओर के काफी लोग हताहत हुए। इस जनजाति के शस्त्र, तीर और कुल्हाड़ी थे और कम्पनी सरकार की सेना तो पूरी तरह शस्त्रों से सज्जित थी। जब ' हो ' लोग पहाड़ियों में छिप गए, तब अंग्रेजी सेनाओं ने गांव के गांव जलाकर नष्ट कर दिया। लेफ्टीनेंट मेलर्ड को पता लगा कि 'हो ' लोग कुटियालोर में एकत्र होकर आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं और अंग्रेजों का डटकर मुकाबला करेंगे। अंग्रेजों को गुमला, अदेजानदिया, जयन्तगढ़ वंशवीर आदि स्थानों को अपने अधिकार में लेने के लिए कुछ कम क्षति नहीं उठानी पड़ी। 6 अप्रैल, 1820को गुमदिया क्षेत्र में 'हो ' वनवासियों द्वारा आक्रमण किए जाने पर मेजर रफसेज को अपनी जान बचानी मुश्किल हो गयी और जैसा कि होता आया है बाबू अजेबर सिंह की सहायता मिलने पर मेजर रफसेज सिहंभूम से भाग खड़ा हुआ। बरनदिया के बाहर के गांव उनकी आँखों में शूल की तरह चुभ रहे थे।

बलिदान

फसल कटने का मौसम आ चुका था। 'हो ' लोगों ने अपने लोगों को संगठित किया। इस बार गुमलापीड़ के 'हो ' वीरों ने नेतृत्व किया जो घासी सिंह के पूर्वजों से सम्बन्धित थे। अंग्रेजों के प्रतिनिधि और बरकानदीप के सूबेदार ने घासी सिंह को कैद कर लिया। इधर एक और घटना यह हुई कि इस सूबेदार के साथियों ने इस क्षेत्र के मुखिया कोडो पेटर की लड़की के साथ दुर्व्यवहार किया। ' हो ' वनवासी अंग्रेजों को अपने क्षेत्र से हटाने पर पूरी तरह तुले हुए थे। ये लोग पुरूलिया में 31 जनवरी, 1821 को एकत्र हुए और इन्होंने उक्त सूबेदार पर हमला बोल दिया। सूबेदार भाग निकला, कहते हैं कि इस लड़ाई में सूबेदार सहित 15 लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी। पोरहाट के राजा के दो मंत्री और बीस घोड़े कत्ल कर दिए। इसके बाद ' हो' वीरों ने 6 फरवरी,1821 को सिनेपुर किले पर धावा बोल दिया और सभी सड़कों व घाटों की नाकाबन्दी कर दी जिससे कि मेजर रफसेज की कोई कुमुक न आ सके।

यहाँ अंग्रेज सरकार द्वारा नियुक्त जमादार रतन सिंह ने निपुर का किला, जो उसे अंग्रेजों द्वारा दान में मिला था, 'हो' वीरों को सौप दिया। इस हार को मेजर रफसेज ने 'हो ' जनजाति की एक भारी जीत स्वीकार किया है। कहते हैं कि सन् 1821 में अंग्रेजों ने 'हो ' वीरों के साथ सन्धि की। इस सन्धि को 'हो ' भाषा में अनुवाद कराया गया। सन्धि में यह भी शर्त रखी गयी की इस क्षेत्र में अन्य जातियों के लोग भी बस सकेंगे और 'हो' वनवासी अपने बच्चों को उड़िया और हिन्दी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करेंगे। परन्तु इस सन्धि के बाद अंग्रेजों ने अपनी शक्ति पुनः संजोकर 'हो ' वनवासियों को फिर से तंग करना शुरू कर दिया और यह सन्धि अधिक काल तक नहीं रह सकी।

जयन्तगढ़ पर धावा

फरवरी 1830 में एक बार फिर आजादी की चिनगारी भड़की और इस जनजाति के प्रायः 1200 वीरों ने जयन्तगढ़ पर हमला बोल दिया। पर पहले ही सूचना पाकर जयन्तगढ़ कम्पनी से नियुक्त शासक (एजेंट) रघुनाथ बस्सी भाग गया था। उसके आदमी वनवासियों का सामना नहीं कर सके और जयन्तगढ़ ,जो तब शोषण की गद्दी, अंग्रेजी शासन का प्रतीक बन गया था, पूरी तरह नष्ट कर दिया गया। इस आक्रमण में जयन्तगढ़ की पराजय से अंग्रेज तिलमिला गए परन्तु वे तुरन्त अपनी हार का बदला ले पाने में असमर्थ थे। इसलिए हालांकि रघुनाथ बस्सी को पुनः जयन्तगढ़ में उन्होंने अपना एजेंट नियुक्त किया किन्तु मुण्डाओं और मानकियों के साथ एक लिखित समझौता भी किया जिसके अनुसार बस्ती पर एक कड़ी पाबंदी लगा दी गयी थी कि वह वनवासियों से आठ आना प्रति खेत (जिसमें जुताई होती हो) से अधिक एक पैसा भी वसूल नहीं करेगा। लेकिन इसके बावजूद अंग्रेजों का शासन यानी विदेशी शासन तो रहा ही, जो वनवासियों को स्वीकार्य न था । इसलिए एक वर्ष बाद ही दूसरा संग्राम राँची जिले के एक परगना सोनपुर में 1 दिसम्बर, 1831 को शुरू हुआ जो छोटानागपुर से फैलता हुआ तत्कालीन अवध की सीमा तक जा पहुँच। इस विद्रोह का नेतृत्व भी 'हो ' जनजातियों में से लरका कोल नामक वनवासियों ने किया था। यह संघर्ष इतिहास में **कोल विद्रोह** के नाम से विख्यात हुआ।

तीर से निमंत्रण

इन लोगों में विद्रोह आरम्भ करने के पहले एक प्रथा तीर भेजने की थी । ये लोग अपने साथियों को तीर भेज कर आंदोलन में शामिल होने का निमंत्रण भेजते थे। जो लोग सहमत होते,वे तीर वैसा ही वापस लौटा देते थे और जो लोग शामिल नहीं होना चाहते थे वे तीर को तोड़कर वापस करते थे। अंग्रेजों के साथ इन वनवासियों ने 1 फरवरी, 1837 तक लोहा लिया। सिंहभूम के इन पृथ्वी -पुत्रों ने अपनी आजादी की रक्षा के लिए अन्तिम सांस तक अपने छुद्र साधनों से युद्ध किया था।

(लेखक-डॉ. शिवतोष दास)

अध्याय 9

रितुई गोन्डाई

नागवंशी राजाओं के पहले छोटानागपुर में कई मुंडा राजा थे। लिखित इतिहास नहीं होने के कारण से सभी राजाओं का नाम तो नहीं लिखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर राजा मंदरा मुंडा और राजा पाणि सै का नाम लिया जा सकता है। इन राजाओं के अधीन गांव के मुंडा, पीड़ के मानकी आदि हुआ करते थे। जो पश्चिमी सिंहभूम के कोल्हान-पोड़ाहाट में अभी भी कार्यरत हैं।

मिरगिलिन्डिग गाँव में रितुई गोन्डाई सिंकु नाम का एक आदमी रहता था। वह बहुत धनी था। अपनी ताकत एवं अमीरी के लिए काफी चर्चित था। कहा जाता है कि वह अकेले ही दस आदमियों के साथ मुकाबला करने का दम-खम रखता था। इनकी प्रसिद्धि आस-पास में फैल गई। इसकी जानकारी राजा के कानों तक पड़ी।

प्राचीनकाल में जगन्नाथपुर में जगन्नाथ सिंह नामक राजा थे। उनके पास घोड़े -हाथियों का एक बड़ा समूह हुआ करता था। वह जब शिकार के लिए निकलता था, तो हाथी के गले, में सोने का घंटा पहना देता था। एक बार हाथी के गले का घंटा चोरी हो गया है।

जब राजा को घंटा की चोरी का पता चला तो उसने इलाके के सभी मानकी मुण्डा को इत्तला कर दिया और उस घंटा का पता लगाने वाले को इनाम देने की घोषण कर दी। घांसी और सिपाही उस घण्टे की तलाश में चारो ओर निकल पड़े।

एक घर में मुर्गी अण्डा पर बैठी थी। जब मुर्गी बाहर निकलने के लिए उड़ी तो घंटा से टकराने पर घंटा की आवाज गूंज उठी। उस घर का मालिक था रितुई गोन्डाई। रितुई गोन्डाई को चोरी के इल्जाम में गिरफ्तार किया गया और राजा के पास लाया गया। राजा ने हुक्म दिया कि रितुई को ढेंकी में कूट-कूट कर मारा जाये। आदेश जारी हुआ। दस व्यक्तियों ने ढेंकी कूटने के लिए तैयार किया। देखना क्या रितुई एक पैर से ढेंकी को अपने ऊपर गिरने से पहले रोक दिया करता था। बार-बार ऐसा हो रहा था। किन्तु एक बार रितुई ढेंकी रोकना छोड़ दिया। कूट-कूट कर मारा गया। 'हो' भाषा में बोला जाता था कि 'तबेन कियः को' कूट-कूट कर चिपटा कर दिया गया चूड़ा बना दिया गया।

रितुई का लाश जहाँ पर गाड़ दिया, वहाँ एक तालाब है। अभी भी देखा जा सकता

है। इस तालाब को अभी भी गोन्डाई पोखरी नाम से जाना जाता है। ये तालाब जगन्नाथपुर के दक्षिण भाग में स्थित है।

जिस प्रकार से गांव और पीड़ में मुंडा मानकी हुआ करता था, ठीक उसी प्रकार से पहले प्रत्येक गोत्र (किलि) में 'डंगुवा बिसाय' दिउरी (मराङ बोंगा में पूजा करने वाला पुजारी) एवं कुछेक गोत्र में गोन्डाई हुआ करता था। अलग-अलग गोत्र और सगोत्र के लोग अलग-अलग जगहों में रहा करते थे। सिंकु, पिंगुवा, बिरूआ एवं कुछ अन्य गोत्र के लोग 'चितरी-बिलि पि'' में रह रहे थे। चितरी बिलि पि में उस समय का गाड़ा हुआ पत्थर जिसमें कोमचोंग दिरि प्रमुख हैं और ''ससान दिरि'' अभी भी प्रमाण के रूप में मौजूद हैं। ''चितरीबिलि पि'' से ही सिंकू गोत्र के रितुई गोन्डाई, पिंगुवा गोत्र के जोगला गोन्डाई और बिरूवा गोत्र के कोलाय गोन्डाई सिन्दरी गुयु में बस गये।

इन तीनों गोन्डाईयों में से मैं आप सबों को रितुई गोंन्डाई के बारे में जानकारी देना चाहूंगा।

सिंह राजाओं और होड़ (हो) लोगों के बीच हुए विद्रोह एवं सिंह वंश के राजाओं का कुर्सीनामा देखने से ऐसा लगता है कि रितुई गोन्डाई के समय पोड़ाहाट में सिंह वंश का तेरहवां राजा जगन्नाथ सिंह (द्वितीय) राज करता था। जगन्नाथ राजा का कोल पीड़ों (होड़ दिसुम) पर कब्जा तो नहीं था, लेकिन वे कोल पीड़ों के रास्ते से साधारण आदमी की तरह आना जाना करता था। जगन्नाथ राजा का जगन्नाथपुर में ठहरने के लिए मकान और उनका कचहरी था। राजा के पास हाथी के गले में बांधने के लिए एक घंटी (दमारकोम) था। जब भी वह कहीं निकलता था हाथी के गले में घंटी बांध देता था।

रितुई गोन्डाई की एक बहन थी। राजा ने उससे शादी करने का इच्छा प्रकट किया। इस पर रितुई गोन्डाई ने राजा से कहा, मेरा गोत्र सिंकु है और तुम भी सिंह राजा हो, हम दोनों सगोत्र हैं। इसलिए यह शादी नहीं हो सकती है। इस पर राजा ने रितुई गोन्डाई से कहा -तुम एक साधारण आदमी हो, तुम मेरे बराबर के नहीं हो और न ही तुम मेरा सगोत्र हो सकते हो। क्योंकि मैं एक राजा हूं। ये सब बातें सुनकर रितुई गोन्डाई ने राजा से कहा ठीक है हमदोनों एक दूसरे का धन-दौलत और मवेशी देखेंगे। किसके पास अधिक है। राजा घमंड में आकर बिना सोचे समझे रितुई गोन्डाई की बात को चुनौती दे दी। रितुई गोन्डाई के मवेशियों को किताहातु से जगन्नाथपुर तक कतारबद्ध करने के बाद भी काफी बच गया। राजा ने भी अपने मवेशियों को कतारबद्ध किया तो किताहातु पहुंचने के पहले ही समाप्त हो गया। इससे राजा को बहुत अपमानित होना पड़ा। अपमानित होने के बाद राजा के मन में बदला लेने की भावना उत्पन्न हुई।

राजा के यहां पूती नाम का एक घांसी था, राजा ने उस घांसी को समझा- बुझाकर हाथी के गले की घंटी को रितुई गोन्डाई के घर में एक भिखारी के माध्यम से रखवा दिया ताकि रितुई गोन्डाई पर चोरी का इल्जाम लगे। घंटी रखवाने के बाद राजा ने घंटी चोरी होने

का ढिंढोरा पिटवाकर घांसी को घंटी तलाशने का आदेश दिया।

घांसी ढोलक लेकर घर-घर भीख मांगते हुए रितुई गोन्डाई के घर पहुंचा। घांसी ने भीख में अंडा मांगा। अंडा लाने जब रितुई गोन्डाई घर में घुसा तो अंडा पर बैठी मुर्गी बाहर निकलने के लिए उड़ी तो घंटी से टकरा गयी जिससे घंटी की आवाज गूंज उठी। घंटी की आवाज सुनकर घांसी ने इस प्रकार से बोलते हुए ढोलक बजाया।

"नअः दो गोमके, नअः दो, रिंगय सिंगय

गपा दो गोमके, गपा दो, गोएः डिल-डिल

इस तरह से ढोलक बजाने के बाद घांसी ने राजा को रितुई गोन्डाई के यहां घंटी होने का सूचना दिया। सूचना मिलने के बाद राजा ने रितुई गोन्डाई को जगन्नाथपुर बुलवाया। राजा ने रितुई गोन्डाई से जवाब-तलब करने के बाद उन पर चोरी का इल्जाम लगाते हुए लोहा ढेंकी से कूट कूटकर मारने का हुक्म दिया।

रितुई गोन्डाई ने अपना सच्चाई का परिचय देते हुए राजा से कहा, अगर सही में तुम्हारा घंटी चुराया हूँ तो मुझको एक बार में ही ढेंकी से कूट कर मार दो। रितुई गोन्डाई को ढेंकी से मारने के लिए दस लोगों ने ढेंकी उठायी और बीस लोगों ने रितुई गोन्डाई को लकड़ी (ताड़ा) से दबाकर उनके छाती पर ढेंकी गिराया। सात बार तक अपने हथेली से रोकने के बाद राजा को अभिशाप देते हुए कहा, "जगन्नाथ राजा तुम आज सगोत्र का इज्जत नहीं रख रहे हो, चोरी के इल्जाम में मुझको ढेंकी से कूटकर मार रहे हो, तुम्हारा वंश का विनाश हो जायेगा। जब तक तुम्हारा वंश का विनाश नहीं होगा तब तक मेरी आत्मा तुम्हारे वंश का पीछा करते रहेगा।"

अभिशाप देने के बाद रितुई गोन्डाई ने राजा से कहा, तुम मुझको मारना ही चाहते हो छाती पर ढेंकी गिराकर नहीं मार सकते हो। इस तरह कहने के बाद उसने छाती के बल सोकर पीठ को ऊपर कर दिया। सात बार तक उनके सिर पर ढेंकी गिराकर कूट-कूटकर मार दिया गया। लोग कहते हैं कूटते समय उनका एक आंख छिटककर किताहातु में उनके घर के आंगन में गिर गया।

रितुई गोन्डाई को जिस जगह पर मारा गया वहाँ पर अभी भी एक तालाब है। उस तालाब के बीच में एक टापू (डिपा) है। लोग कहते हैं इसी टापू के अंदर अभी भी ढेंकी मौजूद है। इस तालाब को अभी भी रितुई गोन्डाई तालाब के नाम से जाना जाता है। यह तालाब जगन्नाथपुर के मुख्य सड़क (चाईबासा, किरीबुरू सड़क) से उत्तर कुछ ही दूर में बलियाडीह एवं मोंगरा जाने के सड़क किनारे हैं।

राजा ने रितुई गोन्डाई को मारने के बाद अपने सिपाहियों को रितुई गोन्डाई की पत्नी एवं बहन को किताहातु से पकड़कर लाने का आदेश दिया। आदेश पाकर सिपाहियों ने किताहातु के लिए चल दिया। सिपाहियों को अपने घर की ओर आते देखकर रितुई गोन्डाई की पत्नी और उनकी बहन घर में छिप गये। सिपाहियों ने जब घर में किसी को नहीं पाया

तो घर को जला दिया और घर में छिपे हुए रितुई गोन्डाई की पत्नी और उनकी बहन जलकर मर गयी। इस जगह पर बाद में किताहातु के लोगों ने एक बड़ा-सा पत्थार गाड़ दिया जो अभी भी प्रमाण के रूप में मौजूद है।

रितुई गोन्डाई में सच्चाई था, वह सच्चाई के लिए अपना जान दे दिया। वह शहीद हो गया। वह मर कर भी अमर हो गया। अभी भी उनके सच्चाई के कारण उनकी आत्मा का पूजा किया जाता है। जगन्नाथपुर में दशहरा के अवसर पर रितुई गोन्डाई के नाम से एक बकरा का पूजा पहले होने के बाद ही पौड़ी मां (पौड़ी देवी) का पूजा होता है।

जगन्नाथ राजा ईष्यालु और घमंडी था। वह किसी को शक्तिशाली, अथवा अपने से अधिक धनवान देखना नहीं चाहता था। जिस प्रकार दीमक लकड़ी को चट जाता है ठीक उसी प्रकार रितुई गोन्डाई का अभिशाप पोड़ाहाट के सिंह राजाओं के वंश को चट कर गया। अर्थात् सिंह राजाओं के वंश का विनाश सदा के लिए हो गया।

(लेखक-डोंगे सिंकु)

❖❖

अध्याय 10

औद्योगिक आतंकवाद के शिकार बने 12 आदिवासी

कलिंग नगर से लौटकर सीरत कच्छप

पुराने समय में किसी बड़े कार्य के शुरूआत पर मानव बलि चढ़ाई जाती थी। यह परंपरा अब भी रूप बदलकर बदस्तूर जारी है। उड़ीसा में 12 आदिवासियों को विकास की बलि बेदी पर चढ़ा दिया गया।

उड़ीसा के जाजपुर जिले की सुकिंदा घाटी प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध है, खनिज प्रचुर मात्रा में हैं, जाजपुर के अन्य भागों की तरह बाढ़ भी नहीं आती है। यहां के वन समृद्ध और भूमि उपजाऊ है। यहाँ मुख्य रूप से 'हो' आदिवासी समुदाय निवास करते हैं जो स्वभाव से सीधे और सरल हैं तथा उनके पास विरासत में तैयार की गयी उपजाऊ भूमि है।



पिछले दशक में वैश्वीकरण की मुहिम ने तेजी पकड़ी और पिछले दो वर्षो में विश्व में लोहे की मांग बढ़ती चली गयी। बाजार के सामने सरकार मजबूर है और जातीय विषमताओं में बंटे हिन्दुस्तान में आदिवासी हितैषी कम ही हैं। पर्यावरणवादी भी विकासवादियों के सामने कमजोर पड़ते जा रहे हैं। पिछले वर्षों में देश के विभिन्न राज्य सरकारों ने निजी कंपनियों के साथ अनेक व्यापारिक समझौते किये। इनमें से

अधिकांश समझौते आदिवासी क्षेत्रों में लौह अयस्क खनन एवं उससे संबंधित एवं उस पर आधारित उद्योगों के लिए थे। इन समझौतों से पहले वहां रहने वाली जनता से कुछ भी नहीं पूछा गया। विकास का मॉडल उनपर जबरन लादा जाने लगा। पांच दशकों से आदिवासी जनता विकास का मतलब समझने में लगी थी। इस बार इस जगह परियोजनाओं का विरोध शुरू हो गया। कलिंगा उन सैकड़ों क्षेत्रों में से एक है।

कलिंगा नगर को मूल रूप से डूबरी के नाम से जाना जाता है। 1990-96 के दौरान राज्य सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम बनाने के लिए लोगों से जमीन मांगी। उन्हें राष्ट्र के विकास में साझेदार बनने का निमंत्रण दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम से होने वाले तमाम फायदों को गिनाया गया। उत्तम पुनर्वास, उचित मुआवजा, नौकरी और अन्य सुविधाओं की बात कही गयी। 37,000 रूपये प्रति एकड़ की दर से उन्हें भुगतान भी किया गया।

लेकिन बाद में सरकार ने यहां सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम नहीं बनाया बल्कि वह निजी कंपनियों को ऊंचे दरों पर जमीन बेचने लगी। नीलांचल, जिंदल, मेसलॉव, विसा इत्यादि कंपनियों के संयंत्र वहां बैठने लगे। सरकार के वायदों को निभाना इनकी जिम्मेदारी नहीं थी। वे सिर्फ मुनाफा कमाने आये थे। एक के बाद एक गांव नष्ट होते गये। पुलिस ने कंपनी का पूरा साथ दिया। जब तक लोग समझते कि उनके साथ छल किया गया है, बहुत देर हो चुकी थी। लोग बर्बाद हो चुके थे। लेकिन टाटा क्षेत्र के लोगों के पास एक मौका शेष था। उन्होंने इस अन्याय का विरोध करना शुरू किया दूसरी ओर उद्योगपति और सरकार भी अपने इरादों में दृढ़ थे और वे विकास विरोधियों को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए तत्पर थे।

क्षेत्र के लोग वैसे तो लड़ने को उतारू नहीं थे और सिर्फ ये चाहते थे कि विकास के नाम पर उनका विनाश न हो। उन्होंने कई बार वार्ता का रास्ता अपनाया। शांतिपूर्ण ढंग से उन्होंने अपनी बात रखनी चाही। लेकिन सरकार ने साश्वत मिश्रा जैसे धुर आदिवासी विरोधी अफसर को वहां का जिलाधिकारी बना दिया ताकि आदिवासियों को कड़ाई से दबाया जा सके। स्थानीय विधायक जातीय एवं राष्ट्रीयता का प्रश्न उठाकर क्षेत्र में गाजा पट्टी जैसी समस्या का निर्माण करने में लगे रहे। वार्ता के पिछले दो अवसरों पर पुलिस द्वारा बल प्रयोग किया गया। कंपनियां पर्दे के पीछे रह कर सब कुछ संचालित करती रहीं।

दो जनवरी की सुबह नये साल पर नये जोश के साथ पुलिस जमीन पर काबिज होने को निकल पड़ी। शाम तक पूरी दुनिया को पता चला कि प्लांट के लिए बाउंडरी वॉल के निर्माण के वक्त पुलिस एवं आदिवासियों के बीच संघर्ष हुआ और एक पुलिसकर्मी सहित 13 लोग मारे गये। लेकिन हकीकत कुछ और ही थी। वह संघर्ष कम और कत्लेआम ज्यादा था। यह सुनिश्चित हत्याकांड था। पुलिस इस भावना के साथ निकली थी कि बिना सबक सिखाये जमीन नहीं लिया जा सकता। आखिर बाउंडरी निर्माण के लिए ईंट, बालू, सिमेंट और मजदूरों की जरूरत होती है, आधुनिक हथियारों से लैस 14 प्लाटून पुलिस की नहीं!

पुलिस की निगरानी में डोजर खेतों को नष्ट करने लगे। आसपास के गांव के 100-200 लोग जमा हो गये। जैसे-जैसे सूचना फैली और भी लोग जुटने लगे। लेकिन लोगों ने धैर्य नहीं खोया। चार लोग फिर वार्ता के लिए निहत्थे आगे बढ़े थे। दो लोग जैसे ही नजदीक पहुंचे उनको बिना सुने ही वहीं गोली मार दी गयी। युद्ध के नियमों में भी वार्ताकार को गोली नहीं मारी जाती फिर पुलिस ने अपनी ही जनता को गोली से क्यों उड़ा दिया। उनको लेने को और भी लोग आगे बढ़े। इसी बीच पुलिस ने रस्सी खींचकर लैण्डमाइन का विस्फोट कर दिया। क्या लैण्ड माइन का इस्तेमाल पुलिस के अधिकार क्षेत्र में आता है। उसे यह हथियार कहाँ से मिला। क्या पुलिस को आतंकवादी कहा जाना अतिशयोक्ति होगी। क्या सरकार इस आतंकवादी का पोषक नहीं है। और निश्चय ही औद्योगिक घराने मुनाफे के लिए सबकुछ करा रहे हैं! लैण्ड माइन के विस्फोट के बाद उपस्थित जनसमूह में अफरा-तफरी मच गयी। कुछ लोग गिर गए। कुछ भागने लगे। इस बीच पुलिस ने अश्रु गैस और रबर बुलेट की फायरिंग शुरू कर दी। लोग गिरे हुए लोगों को छोड़कर भागने के बजाय उन्हें उठाकर साथ ले जाना चाहते थे। इस बीच पुलिस ने अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी और गिरे हुए लोगों को लाठी और संगीनों से क्रूरतापूर्वक पीटने लगी।

जंगल में भाग रहे लोगों के पीछे से गोलियों की बौछार की गयी। सरकार अब तक हिसाब दे नहीं पायी है कि कितनी राउंड गोलियां चली। कुछ पुलिस वाले अति उत्साह में आगे बढ़कर लोगों को शूट करने में लगे थे। इनमें से एक लोगों के भीड़ में घुस गया और उनके रोष का शिकार हो गया। लैण्ड माइन की आवाज सुनकर और भी लोग जमा होने लगे। पुलिस फायरिंग करती रही। पुलिस की गोली 3 किलोमीटर दूर तक भी पायी गयी है। घर के बाहर खड़ा एक बालक भी गोली का शिकार हो गया। आखिर पुलिस वहां क्या करना चाहती थी। क्या पुलिस ट्रेनिंग में लॉ एंड ऑर्डर कंट्रोल करने का यही प्रशिक्षण दिया जाता है। भाग रहे लोगों को पीछे से गोली मारी गयी और जब वे गिर गये तो उन्हें संगीन और लाठियों से पीट-पीट कर मार डाला गया। वहां एक ऐसी लाठी मिली जो खून से रंगी हुई थी और उस पर एक महिला के बाल भारी मात्रा में चिपके हुए थे। शायद इस लाठी से उस महिला के सिर पर बार-बार बुरी तरह प्रहार किया गया जब तक कि वह मर नहीं गयी। एक घायल व्यक्ति जिसके सीने पर गोली मार दी गयी और संगीन से उसके चेहरे पर वार किया गया। पुलिस का क्रूर चरित्र निर्लज्जता के साथ अपना नंगापन प्रस्तुत कर रहा था।

इसके बाद पुलिस घायलों एवं मृतकों को अपने कब्जे में लेने का प्रयास करने लगी। गांव वालों ने 4 मृतकों को सुरक्षित रख लिया और अनेक घायल अपने लोगों की सहायता से गांव के सुरक्षित क्षेत्र की ओर आने में सफल रहे। पुलिस ने भी कुछ घायलों एवं लाशों को अपने कब्जे में लिया। गाड़ी में उसने 6 लाशों को चावल के बोरी की तरह एक दूसरे के ऊपर लाद दिया। इनके उपर दो बुरी तरह घायल लोगों को भी फेंक दिया गया। 6 मृतकों में से तीन कुछ वक्त जिंदा थे जब उन्हें खेत में गोली लगी थी। लेकिन जब उन्हें गाड़ी पर लादा गया तब उन्हें संगीनों से वार कर और सीने पर गोली दाग कर मार डाला गया। दूसरी

गाड़ी में लादे गये पांच घायलों का अब तक कोई पता नहीं हैं। गांव वालों ने जब अपने स्तर पर घायलों को ले जाने के लिए गाड़ी का प्रबंध करना शुरू किया तो पुलिस ने इसमें बाधा डाली और एक-दो गाड़ी वालों को भगा भी दिया।

किसी तरह घायलों को लेकर गांव वाले कटक अस्पताल सुबह चार बजे पहुंचे। घायलों का वहां भी उचित चिकित्सकीय प्रबंध करने में आठ घंटे का समय लग गया। इतनी बड़ी जनसंहार की घटना के बाद भी सरकार ने त्वरित चिकित्सा प्रबंध के लिए अस्पताल को कोई निर्देश नहीं दिया था। पुलिस अपने कब्जे में लिए गये घायलों को जाजपुर टाउन अस्पताल ले गयी थी। बाद में उनमें से दो को कटक अस्पताल ले जाया गया जिनमें से एक की मृत्यु हो गयी। चीमा हेम्ब्रम जिसे रात 11 बजे आर्थोपेडिक्स विभाग में भर्ती किया गया था। सुबह तक जमीन पर ही पड़ा रहा। एम.पी. के दौरे के पांच मिनट पहले उसे बेड पर लिटाया गया। विभागाध्यक्ष को ढूंढ़ने पर पता चला कि उसने आज छुट्टी ले रखी है। अस्पताल के कर्मचारी भर्ती रजिस्टर दिखाने से कतराते रहे कि कितने लोगों को भर्ती किया गया है और उन्हें किस समय लाया गया था। इस गोली कांड के अगले दिन पुलिस ने 6 मृतकों को गांव वालों के हवाले कर दिया। चार लाशों को गांव वालों ने रख लिया था। एक व्यक्ति की कटक अस्पताल ले जाने के क्रम में मृत्यु हो गयी। जाजपुर अस्पताल द्वारा कटक को स्थानांतरित एक व्यक्ति की बाद में इलाज के दौरान मृत्यु हो गयी।

आदिवासियों के सपनों को जिंदा रखने के प्रयास में उनके 12 रिश्तेदार शहीद हो गये। जिन मृतकों का पोस्टमार्टम पुलिस ने कराया था उनके शव जब गांव वालों को मिले तो पता चला कि उनके हाथ कटे हुए हैं। प्रशासन और चिकित्सा अधिकारियों ने बताया कि पहचान के लिए उनके हाथ रख लिए गये हैं क्योंकि चेहरे से वे पहचाने नहीं जा रहे थे। पुलिस के चौथे दलील लोगों के प्रश्नों के सामने टिक नहीं पाये कि उनके पहचान का आपने क्या प्रयास किया था। क्या आपको नहीं मालूम था कि वे किस क्षेत्र के हैं। उनके चेहरे खराब कैसे हो गये। उनका फिंगरप्रिंट क्यों नहीं लिया। दलील पुलिस इसलिए देने को मजबूर हो गई थी क्योंकि उसे अंदेशा नहीं था कि प्रतिक्रिया इस कदर उमड़ेगी।

पुलिस ने उड़ीसा में उद्योगों की स्थापना के लिए बहुत से निरीह लोगों का खून बहाया है। वह सरकार के समर्थन और उद्योगों के सहयोग से निरंकुश हो चुकी है। वह समझती थी कि कलिंग नगर में तो हमने 6 कंपनियों का कब्जा दिला ही दिया और आगे कोई आवाज उठाने की जरूरत न करे इसलिए लोगों को सबक सिखाना जरूरी है। ऐसा नहीं है कि लैंड माइन का इस्तेमाल पहली बार किया गया था। कंपनियां पुलिस को यह हथियार मुहैया कराती हैं जिससे जनता में दशहत फैलायी जा सके। पूरे क्षेत्र को खाली कराया जा सके इसलिए पुलिस यहाँ वहाँ पहले भी इसका प्रयोग करती रही है। गड्ढे और श्मशान जैसे क्षेत्र में पूर्व पुर्नवासित घरों के बगल में भी वह विस्फोट करती है कि वे तंग आकर उसे भी छोड़ दें। फायरिंग तो हर वार्ता-विरोध का अंग बन चुका है।

डुबरी (कलिंगा नगर) के शहीदों को हूल जोहार!!

1.	शहीद रंगलाल मुर्दुईया,	40 वर्ष,	बलीयागुटू
2.	शहीद जोंगा जारिका,	27 वर्ष,	बमियागुटू
3.	शहीद सुदामा बारला,	22 वर्ष,	बेलोरी
4.	शहीद राम गगराई,	35 वर्ष,	गढ़
5.	शहीद अटि जामुदा,	32 वर्ष,	चांदिया
6.	शहीद बाना बोदरा,	35 वर्ष,	गढ़पूर
7.	शहीद दिवगी तिरिया,	30 वर्ष,	चाम्पाकोईला
8.	शहीद लंदू जारिका,	29 वर्ष,	बमियागुटू
9.	शहीद रमचंद्र जामुदा,	36 वर्ष,	बमियागुटू
10.	शहीद मुक्ता बंकिरा,	40 वर्ष,	चांदेया
11.	शहीद गोविंद लागुरी,	12 वर्ष,	बमियागुटू
12.	शहीद बगरान सोय,	25 वर्ष,	गोबरघटी

अधिकारों के संघर्ष की रक्तरंजित दास्तान का यह हिस्सा कलिंग नगर में इन 12 आदिवासियों के खून से लिखी गयी है। इन आदिवासी शहीदों ने अपने पीछे अपना पूरा घर-परिवार, खेत-खलिहान, जंग, नदी, पहाड़ और अपने कई सुनहरे सपने छोड़ गये हैं। इन्होंने अपनी शहादत से मातृभूमि की रक्षा की सीख पूरे विश्व के आदिवासी समाज को दिया है। औद्योगिक घराने और निर्लज्ज सरकार को भी यह सीख दिया है कि उनकी मनमानी और निर्लज्जता को आदिवासी समाज कभी स्वीकार नहीं कर सकती है। उनके शहीद स्थल और उनके पवित्र खून से सने डूबरी की उस धरती को उनसे कोई छीन नहीं सकता।

पुलिस ने इस बार उन्हें पूरा सबक सिखाने का सोच रखा था। पहचान की बात तो तब आती है जब अनजान क्षेत्र से एक अनजान लाश मिले। उसके परिजनों को खोजने की पूरी कोशिश हो और कपड़ों इत्यादि से उनके पहचान की कोशिश हो। इसके लिए उड़ीसा पुलिस का एक पूरा विभाग एवं एक बेबसाइट भी है, जिसमें अज्ञात लोगों की पहचान के लिए मुहिम चलायी जाती है तथा शवों के चित्रों को पहचान के लिए प्रदर्शित किया जाता है। यहां ऐसा कुछ नहीं किया गया। क्योंकि मंशा पहचान करने की नहीं थी। मंशा थी सबक देने की जो भी उनके विकास और उद्योग के रास्ते में सामने आयेगा, उसे पुलिस और सरकार यही सबक सिखायेगी। यही कारण है कि पुलिस ने सिर्फ उनका हाथ ही नहीं काटा बल्कि उनके गुप्तांग भी काट डाले। ऐसा इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ कि एक राष्ट्र के अंदर

कल्याणकारी सरकार के नुमाईंदों ने ऐसा कारनामा किया हो और यह सबकुछ विकास के लिए कराया जा रहा है।

उद्योग का हिंसक चरित्र पुलिस के माध्यम से अपनी बात कह रहा है। यह सब कुछ पहचान करने की कोशिश नहीं करना पहचान मिटाने की साजिश का हिस्सा है। अगले दिन पांच तारीख को सभी मृतकों का अंतिम संस्कार किया गया। इसके पहले क्षेत्र के आदिवासियों ने हाइवे को दोनों ओर से काट डाला और बाहरियों के प्रवेश पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। इस घटना की तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

पूरे देश के आदिवासी स्तब्ध हो गये थे। राउरकेला में आजादी के बाद फैक्टरी के लिए सरकार ने जमीन ली थी। जमीन देने वाले विकास का शिकार हो गये। जर्मन सरकार भी इस बात को समझ चुकी है कि उसकी सहायता का इस्तेमाल आदिवासियों को नेस्तनाबूद करने के लिए हुआ। वहां के लोगों ने शहर के चारो ओर का रास्ता बंद कर दिया और मुंबई कोलकाता मार्ग जाम हो गया। उनका कहना था कि उन्हें व्यर्थ ही उनकी जमीन से हटाया गया। उनकी जमीन आज भी वैसे ही पड़ी है अतः उनकी जमीन उन्हें वापस की जाये।

झारखंड भी भू-अधिग्रहण के मामले में गर्म हो उठा, जहां-जहां फैक्टरी लगाने की बात थी। वहां के लोग पहले से ही आंदोलित थे। इस घटना की प्रतिक्रिया और अपने संघर्ष के साथियों के शहादत के समय एकजुटता के लिए उन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में विरोध प्रदर्शन किया। सात तारीख को यू.पी.ए. ने झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में बंद का आह्वान किया। औद्योगिक घराने आदिवासियों और उनसे संवेदना रखने वाले शुभचिंतकों की प्रतिक्रिया से घबरा उठे।

भाजपा उड़ीसा के जुएल उरांव ने जब सरकार से समर्थन हटाने की मांग उठायी तो नवनिर्वाचित अध्यक्ष ने उसकी आवाज को यह कह कर दबा दिया कि इसका सवाल ही नहीं उठता। अन्य राजनैतिक दल भी सिर्फ नवीन पटनायक का विरोध कर रहे हैं। वे असली मुद्दे और आर्थिक सवालों को उठाने से कतरा रहे हैं। उड़ीसा सरकार ने तो अपने नुमाइंदों को कोर्ट में भेजकर इस बंद को असंवैधानिक बताने का भी प्रयास किया।

डुबरी कलिंग नगर निवासी और देश के अन्य भागों में रहने वाले आदिवासियों के लिए यह बंदी भर का प्रश्न नहीं था। एक ग्रामीण ने नाराजगी जतायी कि राजनेता सिर्फ नवीन पटनायक का विरोध कर रहे हैं कि वे उसकी जगह ले सके। एक अन्य ग्रामीण ने कहा कि इससे आगे देखना चाहते हैं कि लोग हमारे लिए सात जनवरी के बाद क्या करते हैं।

लेकिन दुःख की बात है कि सरकार, राजनीतिक पार्टियां और उद्योग जगत ने कलिंग के शहादत के बाद जनाकांक्षा को शांत करने की दिशा में ही कदम उठाया। समस्या के वास्तविक समाधान की ओर वे बढ़ना नहीं चाहते। दो दिन बाद ही खनन उद्यमियों की आवभगत शुरू हो गयी। उन्हें नये खान एवं बेहतर जगह देने की बात हो रही है। खनन कंपनियाँ भी मीडिया के माध्यम से यह कह रहे हैं कि उनके इरादे दृढ़ हैं। सरकार ने उनकी

मेहमाननवाजी पहले की तरह जारी रखी है। विपक्ष आदिवासियों को उनके ही जमीन पर विकसित करने की नीति के बजाय विस्थापन और पुर्नवास की ही बात अपने ढंग से कह रहा है।

चंपा कोइली में तो 12 लोग पुलिस की गोली और बर्बरता का शिकार हो गये, लेकिन पूरे सुकिन्दा क्षेत्र में उद्योगपतियों और कंपनियों के हिंसा के शिकार जो हजारों आदिवासी हुए हैं उन्हें गोली नहीं लगे, उनके हाथ एवं गोपनीय अंग नहीं काटे गये पर एक शातिर एवं ठंडे खून से कातिल की तरह उन्हें उनकी जमीनों से उखाड़ फेंका गया और वे समाज सहित खत्म हो गये। कलिंगा की घटना पर सरकार और उद्योगपतियों ने जिस प्रकार से प्रतिक्रिया व्यक्त की है उससे यही लगता है कि वे अब कुछ दिनों तक खुली बर्बरता एवं गोली का सहारा नहीं लेंगे। पर उनके सुनियोजित कत्ल की योजना जारी रहेगी और वे इससे पीछे हटने वाले नहीं हैं। ऐसे में जरूरी है कि हम मिल कर उनके विरूद्ध अभियान छेड़ दें। प्रकृति विनाश को उतारू इन पूंजीपतियों और उनके दलालों को अपने क्षेत्रों में घुसने से रोक दें।

उपभोक्ता के शिकार लोगों को भी यह समझने की जरूरत है कि यदि उनकी विलासिता के लिए आदिवासी क्षेत्रों और प्रकृति को नष्ट किया गया तो सबसे पहले उनका ही नष्ट होना तय है।

औद्योगिक क्रांति के बाद विश्व के अनेक देशों को गुलाम बनाया गया था। आज विकास की गति बिजली की तेजी से बढ़ रही है और इसका प्रणेता उद्योग है। वैश्वीकरण के इस दौर में विकासवादी अपने दंभ में उन्मत्त होकर आतंक के बल पर एवं दूसरों की कीमत पर विकास करना चाहते हैं। उनके विकास की कीमत और उसका खामियाजा किसी और को भुगतान पड़ता है।

लोग अपनी कुर्बानी दे देते हैं या फिर गोलियों के बल पर उनसे कीमत वसूल ली जाती है। इस तरह विकास के अगले चरणों के लिए भी आतंक की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है।

(साभार-देशज अधिकार)

लेखक-सीरत कच्छप

❖❖

अध्याय 11

डोमिसाइल के मामले पर हिंसात्मक गतिविधियाँ

सबसे पहले डोमिसाइल विरोधी लोगों ने 18 जुलाई को रांची, जमशेदपुर, बोकारो एवं धनबाद बंद का आह्वान किया। बंद के दौरान इन लोगों ने जो उग्र प्रदर्शन किया उसका छाया-चित्र (रांची एक्सप्रेस) का एक नमूना नीचे दिया जाता है।



18 जुलाई के बंद की प्रतिक्रिया में भारतीय जनता पार्टी के सांसद, झारखंड दिशोम पार्टी के संस्थापक सालखन मुर्मू एवं आदिवासी छात्र संघ ने 20 जुलाई को झारखंड बंद की घोषणा की। इस बंद के दौरान सालखन मुर्मू, आजसू नेता सूरज सिंह बेसरा अनेक समर्थकों सहित जमशेदपुर में गिरफ्तार कर लिये गये जिन्हें बाद में छोड़ दिया गया। 20 जुलाई को घुरती रथयात्रा होने के कारण डोमिसाइल समर्थक 21 संगठनों ने 20 जुलाई के बंद को वापस लेने का प्रस्ताव किया लेकिन सालखन मुर्मू ने इस प्रस्ताव को खारिज करते हुए घोषणा की कि 20 जुलाई का बंद जारी रहेगा। डोमिसाइल नीति के विरोध व समर्थन में लोगों के सड़कों पर उतरने एवं आपस में लड़ने पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए झामुमो के अध्यक्ष श्री शिबू सोरेन ने कहा "बहुत हो गया, डोमिसाइल की मंशा समझिये और लड़ाई बंद कीजिए।" इस पर मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल मरांडी ने शिबू सोरेन को आड़े हाथों लेते हुए कहा कि डोमिसाइल नीति नहीं बदलेगी।

हिन्दुस्तान के अनुसार इस ऐतिहासिक बंद के खिलाफ प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री श्री जगन्नाथ मिश्र ने कहा कि डोमिसाइल नीति को वापस लेना होगा। बंधु तिर्की ने कहा कि आन्दोलन को बदनाम करने की साजिश की जा रही है। चमरा लिंडा ने



कहा कि छेड़-छाड़ हुई तो आर्थिक नाकेबंदी। शिबू सोरेन ने कहा कि फैलाई जा रही है हिंसा। महेन्द्र सिंह, विधायक, भाकपा (माले) ने कहा कि सरकार तुरंत सर्वदलीय बैठक बुलाये। इसी बीच डोमिसाइल विरोधियों ने 24 जुलाई के बंद से क्षुब्ध होकर कहा कि 26 जुलाई को 24 घंटे का झारखंड बंद रहेगा। इस संदर्भ में प्रभात खबर के अनुसार बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद ने कहा कि झारखंड की डोमिसाइल नीति खतरनाक है केन्द्र सरकार झारखंड में राष्ट्रपति शासन लगाये। एक विज्ञापन द्वारा विधानसभा के अध्यक्ष श्री इन्दर सिंह नामधारी ने कहा " जरा सोंचें। क्या हिंसा एवं तनाव के वातावरण में झारखंड के सर्वांगीण विकास का सुनहरा सपना साकार होगा। हर कदम के पहले विवेकपूर्ण, मंथन करें।" धुर्वा क्षेत्र के लोगों ने बैठक कर चेतावनी दी। मांग की गई कि सावना, काशीनाथ, बंधु तिर्की के विरूद्ध प्राथमिकी दर्ज की जाये। यह भी घोषणा की गई कि सरना स्थल, धुर्वा में दीपक, बबलू का स्मारक बनेगा, नाम होगा शहीद चौक। मुख्यमंत्री के बदलते बयानों पर कहा गया कि (11 जुलाई) डोमिसाइल नीति नहीं बदलेगी। 16 जुलाई को कहा गया कि सरकार टस से मस नहीं होगी। 18 जुलाई को कहा गया कि राजनीति की जा रही है। 19 जुलाई को कहा गया कि डोमिसाइल नीति की समीक्षा होगी। 23 जुलाई को कहा गया कि किसी के साथ अन्याय नहीं होगा। 24 जुलाई को कहा गया कि पूरे देश का डोमिसाइल एक है। श्री नामधारी ने फिर कहा कि नेताओं की चुनाव पर नजर ने स्थिति बिगाड़ी, पूरे प्रकरण को गलत तरीके से हैंडिल किया गया। प्रशासन भीड़ को नियंत्रित करने में पूरी तरह से विफल, कर्फ्यू नहीं, लोगों में विश्वास पैदा करें। सरकार और मुख्यमंत्री को स्वयं घूमकर लोगों का दुःख दर्द सुनना चाहिए।

बंद के दौरान हिंसा-प्रति हिंसा के तांडव के लिए कांग्रेस एवं राजग जिम्मेदार। यह बात मुख्यमंत्री ने कही। समता ने कहा कि केन्द्र अविलम्ब हस्तक्षेप करे। विद्यार्थी परिषद् ने कहा - "सरकार की लापरवाही का लाभ उठा रहे हैं राष्ट्र विरोधी तत्व"। भाकपा (माले) ने कहा- झारखंड सरकार लोगों की रक्षा की गारंटी करे। सरना-मसना विकास समिति ने कहा कि मृतकों के परिजनों को मेकन मुआवजा एवं नौकरी दे। राजद ने कहा कि 26 जुलाई के बंद को पूर्ण समर्थन। समता पार्टी के सांसद प्रभुनाथ सिंह ने कहा 'झारखंड में हिंसा मुख्यमंत्री के इशारे पर हो रही है'। शिबू सोरेन कहा कि मरांडी सरकार नया जनादेश ले।

21 लोगों की गिरफ्तारी में 12 डोमिसाइल विरोधी एवं 9 समर्थक के विरूद्ध गिरफ्तारी का आदेश जारी। आर्च बिशप ने कहा कि संत अन्ना की पुत्रियां झारखंड की पुत्रियां हैं। डोमिसाइल मुद्दे पर झारखंड का मसीही समुदाय राज्य सरकार के साथ। डॉ. रामदयाल

मुंडा ने कहा कि 1932 के खतियान का मामला सिर्फ शहरों तक है। इसे गांव तक ले जाने की जरूरत है। धनबाद में डोमिसाइल विरोधियों ने समर्थकों द्वारा आहूत बंद को विफल करने के लिए झारखंड मौलिक रक्षा संघ का गठन किया। डोमिसाइल मुद्दे पर मुख्यमंत्री के आवास में जिलाध्यक्षों एवं प्रदेश कार्य समिति सदस्यों की बैठक में भाजपा के नेताओं में मतभेद उभरा। ग्रामीण नेताओं ने समर्थन किया तो शहरी नेताओं ने विरोध किया। 1932 का खतियान झारखंड का वेद है, समरेश सिंह ने कहा। मुख्यमंत्री ने कहा कि सर्वदलीय बैठक 1 अगस्त को। देवकुमार धान, बंधु तिर्की सहित 11 लोगों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज। राजद विधायक गिरिनाथ व अन्नापूर्णा को आदर्शनगर से लोगों ने खदेड़ा। पथराव भी हुआ। नेता जान बचाकर भागे। झारखंड पार्टी ने डोमिसाइल नीति का स्वागत किया। लोक जन-शक्ति पार्टी ने कहा कि डोमिसाइल के मुद्दे पर सरकार राजनीतिक गोटी खेल रही है। सर्वदलीय बैठक को पाखण्ड बताया।

विपक्ष ने, राजद और झामुमो का खुला विरोध किया। झारखंड प्रदेश आदिवासी मूलवासी रक्षा मंच ने एक प्रस्ताव पारित कर कहा कि बिहारी अधिकारियों को अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जाय। वाम दलों सहित विपक्ष ने बहिष्कार की घोषणा की। बंद का दौर समाप्त होने के बाद कर्फ्यू की अवधि में झारखंड के विरूद्ध उग्र प्रदर्शन कर सचिवालय का महिलाओं द्वारा घेराव किया गया। इसके बाद सचिवालय कर्मचारियों द्वारा 'हमें बिहार वापस करो'' अभियान के तहत हड़ताल कर रोषपूर्ण प्रदर्शन किया गया।

अंत में यह बात उल्लेखनीय है कि डोमिसाइल के संदर्भ में व्यापक भ्रांति झारखंड में व्याप्त है। इस संबंध में डोमिसाइल विरोधी लोगों ने डॉ. प्रदीप जैन बनाम भारत सरकार के केश को उद्धृत करते हुए बार-बार कहा कि देश का एक ही डोमिसाइल होता है लेकिन 2002 (2) एस.एस.सी. पृष्ठ संख्या 29 में प्रतिवेदित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में पूर्व के निर्णय को निरस्त करते हुए कहा गया है कि पूर्व का निर्णय टेकनिकल ग्राउण्ड पर आधारित था जो गलत था। इसे पोपुलर एवं लूज ग्राउण्ड पर देखने की जरूरत है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने चंडीगढ़ हाउसिंग बोर्ड द्वारा लगाया गया डोमिसाइल की शर्त को स्वीकार करते हुए पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के आदेश को निरस्त कर दिया। चूंकि यह निर्णय 2002 का निर्णय है अतः यह निर्णय सभी न्यायालयों सहित झारखंड उच्च न्यायालय के लिए स्वीकार करना एक विधिक अनिवार्यता है।

(साभार-डहर पत्रिका)

❖❖

अध्याय 12

1831-32
महान कोल विद्रोह

1820 के विद्रोह की याद अधिकारियों के मन से मिटी भी नहीं थी कि 1839 के अंत में पहले से भी अधिक भयानक विद्रोह ने संपूर्ण क्षेत्र को झकझोर दिया। डाल्टन के शब्दों में धीरे-धीरे सुलगती हुई आग अब भड़क उठी। इस भड़काव के कारण थे।

1. आदिवासी गांवों में प्रमुखों के बदले मुसलमान, सिक्ख और अन्य व्यापारियों को महाराजा द्वारा पट्टेदार के रूप में लाया जाना।

2. इन लोगों द्वारा आदिवासियों के प्रति अत्याचारपूर्ण व्यवहार। पठानों ने हमारी इज्जत ले ली और सिक्खों ने हमारी बहनों की। हमारे जीवन का कोई मूल्य ही नहीं। हम सब एक ही जाति के हैं। एकजुट होकर चलो, हम लूटपाट करें और उनकी हत्या करें, इस विद्रोह के एक प्रमुख नेता बिंदराय मानकी ने ये बातें चतरा के मजिस्ट्रेट के सामने कही।

3. जे.सी. झा के अनुसार 1831-32 का कोल विद्रोह निराशा और गुस्से का परिणाम था। निराशा सरकार के नये तरीकों और कानूनों के प्रति और गुस्सा उन लोगों के प्रति जिनकी जिम्मेदारी थी इन नियम-कानूनों को लागू करने की और जिन्होंने इन कानूनों की आड़ में अनुचित लाभ कमाया। इस क्षेत्र के आदिवासियों के लिए सबसे बड़ी दुःखद घटना तो यही थी कि उनके नेतागण हिन्दू धर्म को अपना कर जाति से दूर हो गये। और कृषि जमींदारी प्रथा के हिमायती अंग्रेज शासकों के दिल में इस क्षेत्र के आदिवासी भू-स्वामित्व प्रथा के प्रति थोड़ी भी सहानुभूति नहीं थी। यही कारण था कि आदिवासी नेताओं ने गैर-आदिवासियों को यहां बसाया और अंग्रेजों ने शासन की उलझी हुई मशीनरी ऐसे लोगों को थमा दी जिनके दिल में आदिवासी लोगों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। ऐसे लोगों के विरोध में आदिवासियों के दिल में अशांति और हिंसा के अलावा कोई जवाब नहीं था।

(झा.जे.सी. 1994:240)

(लेखक-फादर मैथ्यू अरीमरम्पिल)

❖❖

अध्याय 13

शहीदों की वीरभूमि सेरेंगसिया घाटी

चाईबासा में जब अंग्रेज फौज पहली बार पहुंची तो फौज का डॉ. डनवार अपने घोड़े पर सवार होकर चाईबासा में इधर-उधर घूम रहा था, तब एक वीर लड़ाकू 'हो' जवान डा. डनवार के सामने खड़ा हो गया। डा. डनवार ने जवान से पूछा, "तुम कौन हो। तुम्हारा क्या नाम है।" "जवान ने डा. डनवार को घोड़े से खींचकर नीचे उतारकर थप्पड़ मारते हुए कहा, "अगर तुम्हें प्यास लगी है तो पानी मांग लो, अगर भूख लगी है तो खाना मांग लो, मगर मेरे देश में मेरा नाम पूछनेवाला तुम कौन होते हो।"

अपने इसी तरह के स्वभाव की वजह से अपने लोगों के लिए लड़ाका जैसा सम्मान अर्जित करने वाले हो लड़कों ने सिंग दिशुम या कोल पीड़ में बाहरी लोगों को रहने एवं आने जाने नहीं दिया था। मुगलों और मराठों के अधीन कभी नहीं रहे। कभी माल गुजारी नहीं दी। वे सात सौ सराण्डा वनों के शेरों एवं एशिया में जापान और यूरोप में स्कॉटिश हाईलैण्डर्स की तरह स्वतंत्र थे।

सेरेंगसिया घाटी पश्चिमी सिंहभूम के कोल्हान क्षेत्र के टोन्टो प्रखंड में सेरेंगसिया गांव से लगभग एक किलोमीटर दक्षिण एवं पश्चिमी सिंहभूम के जिला मुख्यालय चाईबासा से लगभग 30 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। चाईबासा से सेरेंगसिया घाटी सिंह-पुखुरिया से निकलती गितिलपी रोड से कासेया, दुरदूर खदान, बड़ा झींकापानी पदमपुर होते हुए जाया जा सकता है। वैसे सिरिंगसिया, जोड़ा-पोखर, झींकापानी के रेलवे फाटक या लोकेसाई से टोन्टो सड़क से होते हुए टोन्टों प्रखंड कार्यालय से होकर भी जाया जा सकता है।

सेरेंगसिया घाटी में आदिवासी हो लोगों का यह प्रतिकार आंदोलन का ही एक हिस्सा था जिसको भारत के इतिहासकारों ने आदिवासी पहचान की वजह से सदा ही नजरअंदाज किया है। मगर देश भक्त तो देशभक्त ही होते हैं चाहे आप उन्हें तत्कालीन विद्रोही कहें अथवा आदिवासी।

पश्चिमी सिंहभूम का आज का यह हिस्सा उस समय अविभाजित सिंहभूम था। हो लड़ाकों की इस वीर भूमि में राजाबासा के पोटो सरदार, बलान्डिया के बेराई डेबाय, नारा, टोपाये, इचाकुटि के जोटो, पाटा डुमरिया के पांडुवा जोंको, सरबिल के कोचें सुदरन आदि

लालगढ़ लावला और बड़पीढ़ के इक्कीस गांवों के सरदारों ने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ पुकाम गांव के नजदीक वैतरणी नदी के कुदाकोइकीर के किनारे लालगढ़ आवला और बड़ पीढ़ के लोगों को इकट्ठा कर सभा किया। सभा में निर्णय लिया गया कि सभी साहब लोगों की हत्या कर दी जाए, ब्रिटिश सिपाहियों को खदेड़ दिया जाए। ब्रिटिश कंपनी की अधीनता कभी नहीं स्वीकार करेंगे, क्यों न हमें इस वैतरणी नदी की तरह खून बहाना पड़े। इस निर्णय की खबर पाते ही विल्किनसन ने बड़पीढ़ के लोगों को सबक सिखाने को 17 नवम्बर, 1837 को फौजों को आदेश दिया। इस आदेश का पता शायद लड़ाकू सरदारों को चल गया, बस क्या था, लड़ाकू सरदारों ने सेरेंगसिया घाटी को अपने युद्ध स्थल के लिए तैयार किया। घाटी के सड़क में रोला, लुपुंग और मेरेल बिछा दिया, सड़कों के किनारे मधु मक्खियों के छत्तों को रख दिया गया, तीर-धनुष, हुतुर-लां, टोंगा अःसर एवं अन्य घातक हथियार से लैस होकर घाटी के किनारे के गुफाओं में छुप गये।

उधर विल्किनसन के आदेश पाने पर बड़पीढ़ के लोगों को सबक सिखाने के लिए कप्तान टिकेल ने चार सौ फायर लॉक्स, साठ घुड़सवार, दो बंदूकधारी एवं सराइकेला राजा इलाके के लगभग दो सौ लड़ाके लेकर 19 नवम्बर, 1837 को सुबह सेरेंगसिया गांव पहुंचे तो गांव में भगदड़ मच गया। जैसे फौजें घाटी पहुंची वैसे ही देशभक्त लड़ाकुओं ने तीर-धनुष, हुतुरलां और टोंगा अःसर से आक्रमण करना शुरू कर दिया, ब्रिटिश फौजों में भगदड़ मच गया और भागती फौज एवं घोड़े फिसलकर गिरने लगे, उन लोगों पर हो लड़ाकों ने जलाया हुआ गोबर, राख के साथ मिलाया हुआ मिर्चा पाउडर फेंका, जिससे आंखों में जलन होने लगीं। मधुमक्खियां डंक मारने लगी। ब्रिटिश फौजों को अपनी जान बचाकर भागने के अलावा कोई रास्ता नहीं सूझा। देशभक्त भूमिपूत्रों ने फौजों एवं घोड़ों को दौड़ा-दौड़ाकर मारना शुरू किया। इसी भागने के क्रम में रामसाई गांव के बगल एक दलदल में एक घोड़ा फंस गया, सिपाही तो किसी तरह जान बचाकर भाग गया लेकिन घोड़ा निकल नहीं पाया और वहीं मरकर सड़ गया। आज भी उस जगह को सादोम सोया-पी के नाम से जाना जाता है। इस लड़ाई में एक हो लड़ाका मारा गया, पांच या छह घायल हो गए बाद में और तीन की मृत्यु हो गयी। ब्रिटिश सेना का एक सूबेदार, एक हवलदार एवं तेरह सिपाही गंभीर रूप से घायल हो गये। इस युद्ध के दूसरे दिन बाद विल्किनसन ने युद्ध का नेतृत्व करने वाले सरदारों को पकड़ने का आदेश दिया। 22 नवम्बर, 1837 को ब्रिटिश फौज तोडांग हातु पहुंचा तो गांव खाली था, कुछ औरतें और दो पुरूष छिपे हुए मिले, दोनों पुरूषों को गोली मार दी गयी, औरतों को जगन्नाथपुर कैम्प लाया गया।

उसके बाद ब्रिटिश फौज जयपुर और कुलाबुरू गांव गया। गांव में कोई नहीं मिलने पर सैनिकों ने रूइया नजोम रूइया, 7 दिसम्बर, 1837 को बलान्डिया के अगल बगल के गांवों को लूटकर जला दिया गया। दूसरे अन्य हो लड़ाकों को पकड़ने के लिए कासिरा, गमारिया, कांटा मडाई आदि गांव में छापा मार कर पोटो, बेराई नारा, पांडुवा, डेबेया बोरा

(बोड़ेया) आदि लड़ाकू सरदारों को कप्तान टिकेल ने 8 दिसम्बर, 1937 को पकड़ लिया, लड़ाकू सरदारों को जगन्नाथपुर कैम्प लाया गया। इसकी सूचना विल्किनसन को दिया गया। लड़ाकू सरदारों को जवाब-तलब के बाद विल्किनसन पत्रांक संख्या 1368 दिनांक 5 दिसम्बर, 1837 के आदेशानुसार पाडुवा, नारा, बोरा (बोड़ेया) पोटो और बेराई को फांसी की सजा सुनाई गयी। 1 जनवरी, 1838 की सुबह को पोटो, नारा और बेराई को जगन्नाथपुर में डाक बंगला परिसर स्थित बरगद पेड़ पर लोगों की उपस्थिति में फांसी दी गई। 2 जनवरी 1938 की सुबह बोरा (बोड़ेया) और पांडुवा को सेरेंगसिया गांव के मुण्डासाई (मिडिल स्कूल टोला) के बगल में स्थित एक पीपल के पेड़ पर हो लोगों की उपस्थिति में फांसी दी गई। आज उस जगह को 'पासे पी' के नाम से जाना जाता है। अन्य 79 हो देशभक्त लड़ाकों को विभिन्न आरोपों में जेल की सजा दी गई।

सेरेंगसिया (सिरिंगसिया) घाटी

कोल्हान क्षेत्र जिस प्रकार से अनेक खनिज संपदाओं से भरा हुआ है। उसी प्रकार से यह क्षेत्र ऐतिहासिक नदियों, घाटियों, पहाड़ों एवं देव स्थलों से भरा पड़ा है। जिसमें वैतरणी नदी, सिरिंगसिया घाटी, गगरा घाटी (मोंगरा) सिंगासों, अंगाबिरा इपिल सिंगी, जंगीबुरू, हेन्दे बुरू, मुर्गा महादेव साल आदि है।

इन ऐतिहासिक स्थानों का लिखित इतिहास नहीं होने के कारण से लोक कथाओं के रूप में ही है, जो कि बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण हम लोग भूलते जा रहे हैं। अगले पीढ़ी के लिए इन ऐतिहासिक स्थलों के बारे में लिखित रूप में बचाए रखना अति आवश्यक है।

सिरिंगसिया घाटी पश्चिमी सिंहभूम के कोल्हान क्षेत्र के टोन्टो प्रखंड में सिरिंगसिया गांव से लगभग एक किलोमीटर दक्षिण एवं पश्चिमी सिंहभूम के जिला मुख्यालय चाईबासा से लगभग 30 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। चाईबासा से सिरिंगसिया घाटी सिंह-पोखरिया से निकली गितिलपी रोड से कासेया, दुरदुर खदान, बड़ा झींकपानी पदमपुर होते हुए जाया जा सकता है। वैसे यह जोड़ा पोखर, झींकपानी के रेलवे फाठक या लोकेसाई से टोन्टो सड़क से होते हुए टोन्टो प्रखंड कार्यालय से होकर भी जाया जा सकता है।

घाटी पहुंचने पर छोटी-सी घाटी-नदी अपनी कलकल करती हुई पक्षियों के मधुर कलरव के साथ लोगों का स्वागत करती हुई घाटी की ऐतिहासिक घटनाओं की याद दिलाती है।

होड़ लोग मुंडा समुदाय के सदस्य हैं। इस समुदाय को कोलारियन ट्राइब्स, आग्रेस समुदाय, आस्ट्रो एसियाटिक आदि के नाम से जाने जाते हैं। इतिहास के पन्नों को देखने से पता चलता है कि किसी समय इस समुदाय के लोगों को भारत देश में काफी दब-दबा था। उनकी ऊंची सभ्यता थी। इस समुदाय के अनेक राजा-महाराजा एवं अनेक वीर पुरूष थे।

कुछ लोगों का कहना है कि हड़प्पा (होड़ रपाः) सभ्यता इन लोगों की सभ्यता थी। लेकिन समय एवं परिस्थिति के अनुसार मुंडा समुदाय की स्थिति इस कहावत की तरह बदल गया।

''टुन्डु बिज नागु जना,
सिंह कुला बिलाय जना'
(दोन्डा सांप नाग सांप बन गया,
जंगल का राजा सिंह बिल्ली बन गया।)''

अर्थात बाहरी लोग (दिकू) राजा बन गया और मुंडा समुदाय के लोगों को जंगलों की ओर भगा दिया गया। इसी भागने के क्रम में मुंडा समुदाय के लोग झारखंड क्षेत्र में पहुंच गये और यहां से ही वे अलग अलग क्षेत्रों में बंट गये। होड़ लोग मुंडाओं के साथ बहुत दिनों तक साथ रहकर सिंहभूम जिले के सिंकु हातु, पिंकु हातु, गगरी हातु, चातोम बरू, कन्टिया (खूंटी), हालदा (हासदा), सरोवादा (सारूदा), हेसाडीह, चाकी आदि स्थानों से गुजरते हुए टेबो घाटी को पार कर इस समय के पोड़ाहाट (नागरा) में आ गए। पोड़ाहाट में पहले से भुइयाँ जाति के लोग रह रहे थे। जगन्नाथपुरी से तीर्थ यात्रा कर वापस आते समय दो मारवाड़ी वहां के महापात्र के अतिथि के रूप में आए और बस गए। इन लोगों ने होड़ और भुइयाँ जाति में संघर्ष करा दिया। इसी संघर्ष के कारण होड़ लोग दक्षिणी-पूर्वी दिशा में बढ़कर इस समय के कोल्हान क्षेत्र में आ गए। उस समय इस क्षेत्र में सरावक जाति के लोग थे। इन सरावक जाति के लोगों को लड़ाकू होड़ लोगों ने मार भगाया था या अपने आप भाग गये होंगे। सरावक जाति के लोगों के भागने के बाद होड़ो लोगों ने सिंग-दिशुम का निर्माण किया। सिंगा दिशुम को कोल पीढ़ के नाम से भी जाना जाता था। दिशुम या कोलपीढ़ सिंग दिशुम के निर्माण होने के बाद भी होड़ लोग एवं भुइयाँ जाति के बीच में हमेशा संघर्ष होता रहता था। इस संघर्ष में भुइयाँ जाति के लोग बार-बार हार जाते थे। इसी हार के कारण से ही सिंग राजाओं का उदय हुआ।

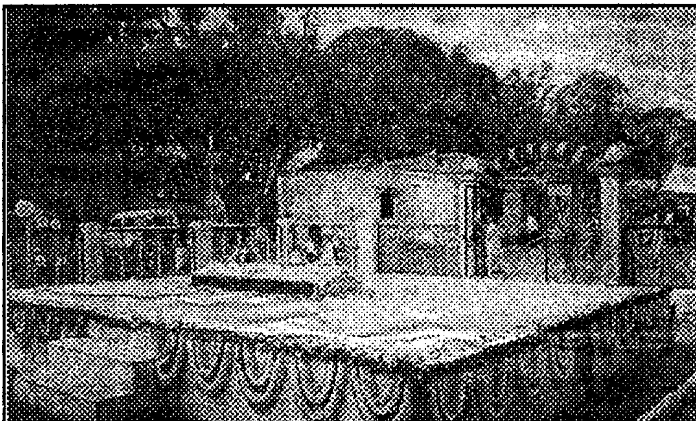
(अनुज कुमार सिन्हा)
साभार-प्रभात खबर

❖❖

अध्याय 14

खरसांवा गोलीकांड

1 जनवरी, 1948 का दिन यानी झारखंडियों की शहादत का दिन यह वही दिन था आजाद भारत का सबसे बड़ा गोलीकांड खरसावां में हुआ। देश के आजाद होने के ठीक साढ़े चार माह बाद खरसांवा की धरती शहीदों के खून से लाल हुई थी। झारखंडी आज भी उस घटना को भूल नहीं पाये हैं। हर साल एक जनवरी को झारखंड की जनता खरसांवा के शहीद स्थल पर जमा होती है, शहीदों को याद करती है और श्रद्धासुमन अर्पित करती है। कितने लोग उस गोली-कांड में शहीद हुए थे, यह आज भी रहस्य बना हुआ है। पूरे मामले को दबाने का प्रयास किया गया था। मृतको की संख्या को कम से कम दिखाने की व्यवस्था की गयी थी, अब तक यह दावा किया जाता रहा है कि हजारों आदिवासी ओड़िसा पुलिस की गोली से शहीद हुए थे।



1 जनवरी 1948 की पुलिस फायरिंग को याद कराता खरसावां का ऐतिहासिक शहीद स्थल

लाशों को ट्रकों पर लादकर दूर-दराज के जंगलों में फेंक दिया गया था। जानकार बताते हैं कि शहीद स्थल जहां बना हुआ है, पहले वहां एक कुँआ हुआ करता था, पुलिस फायरिंग में मारे गये आदिवासियों के शवों को ओड़िसा पुलिस ने पहले उस कुंआ में डाला था जब कुआं शवों से भर गया तब जाकर लाशों को अन्यत्र ठिकाने लगाया गया। इसी से इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि शहीदों की संख्या कितनी होगी।

THE PEOPLE'S MOVEMENT AGAINST THE MERGER OF STATES

On 1 January 1948, the administration of the Orissa State was taken over by the Civilian Officers of the Orissa Provinces. The transfer of power was peaceful. But some of the administrators seemed to come with different ideas, sent telegrams to the Orissa's Chief Minister; 'The conquest is completed.' On that day, there was wide spread discussion in all the State capitals against the merger with the Orissa Province. In Kharswan, these *adivasis* who protested against the merger were massacred by the Orissa Military Police resulting in more than 2,000 deaths. Spontaneous meetings were held opposing the merger with Orissa. Most of the local leaders took the leadership. In Kalahandi where there

पी.के. देव की वह पुस्तक, जिसमें 2000 से ज्यादा लोगों के शहीद होने का जिक्र है

खरसावां गोलीकांड में घायल हुए कुछ लोग आज भी जीवित हैं। वे बस इतना ही बता पाते हैं कि चारो ओर जहां तक नजर दौड़ती थी, लाश ही लाश नजर आती थी। शहीदों की संख्या के बारे में जो बहुत कम दस्तावेज उपलब्द्ध है, उनमें से एक है पी.के. देव (पूर्व सांसद व महाराजा, विपक्ष के नेता) द्वारा लिखित पुस्तक "मेमोरीज ऑफ एन बाइगोन एरा" इस पुस्तक में इस बात का उल्लेख है कि खरसांवा का ओड़िसा में विलय का विरोध करने वाले आदिवासियों पर ओड़िसा मिलिट्री ने फायरिंग की थी, जिसमें 2000 से ज्यादा आदिवासी मारे गये थे। (देखें चार 6 द पीपुल्स मूवमेंट द मर्जर ऑफ स्टेट्स पेज 123) श्री देव की किताब और घटना के प्रत्यक्षदर्शियों के बयान में समानता झलकती है, लेकिन ओड़िया की तत्कालीन सरकार ने पुलिस फायरिंग में सिर्फ 35 आदिवासियों के मरने की पुष्टि की थी, घटना एक जनवरी 1948 की है जिससे संबंधित रिपोर्ट कोलकाता से प्रकाशित अंगरेजी दैनिक द स्टेट्समैन में 3 जनवरी, 1948 के अंक में छपी थी। कटक से भेजी गयी इस रिपोर्ट में कहा गया था कि " ओड़िसा सरकार द्वारा खरसांवा स्टेट्स के टेक ओवर के दौरान विलय का विरोध कर रहे 30 हजार आदिवासियों की अनियंत्रित भीड़ पर गोली चलाने से 35 आदिवासी मारे गये।"

ओड़िसा सरकार के हवाले से यह खबर छपी थी। इस संख्या से स्पष्ट है कि कैसे शहीदों की संख्या को कम कर दिखाया गया था। इस गोलीकांड की जांच के लिए ट्रिब्यूनल का गठन किया गया था उसकी रिपोर्ट कहां गयी, किसी को पता नहीं। जहां तक गोलीकांड


35 ADIBASIS KILLED IN KHARSAWAN
Police Fire on Demonstrators
ORISSA TAKES OVER ADMINISTRATION
Full Security to Minorities

3 जनवरी 1948 का स्टेट्समैन, जिसमें सिर्फ 35 के मरने का जिक्र है

की बात है उसके पीछे की कहानी साफ है। देश की आजादी के बाद रियासतों का विलय हो रहा था। हैदराबाद के निजाम को लेकर सब परेशानी थी जिसे तत्कालीन गृह मंत्री सरदार बल्लभ भाई पटेल ने सख्ती से निबटा था। देशी रियासतों को तीन श्रेणी में बांटा गया था। ये श्रेणी थे ए.बी. और सी।

ए में बड़ी रियासतें थी, बी में मध्यम और सी में छोटी रियासत, खरसांवा स्टेट्स को सी श्रेणी में रखा गया था। सरायकेला और खरसावां दोनों स्टेट्स में ओड़िसा भाषियों की संख्या अधिक थी। इन दोनों स्टेट्स को ओड़िसा में विलय करने का निर्णय लिया गया था।

कश्मीर में भी उन दिनों हंगामा हो रहा था। इस लिए ऐसा निर्देश था कि जो स्टेटस सीधी तरह से बात न माने, उनसे सख्ती से पेश आया जाये। 20 नवंबर, 1947 को वी.पी. मेनन के आवास पर नयी दिल्ली में एक बैठक हुई थी। इसमें ओड़िसा के तत्कालीन प्रीमियर हरेकृशन मेहताब और संबलपुर के तत्कालीन क्षेत्रीय आयुक्त भी शामिल थे। इस बैठक के निष्कर्ष से मेनन ने श्री पटेल को अवगत कराया। इस बैठक में तय हुआ कि विलय को लेकर हो रही परेशानियों से कैसे निबटा जाए। इसका उल्लेख श्री मेनन ने अपनी पुस्तक "द ओड़िसा एंड छत्तीसगढ़ स्टेटस" में किया है।

खरसावां गोलीकांड का सीधा संबंध इसके ओड़िसा में विलय को लेकर था, इसलिए विलय पर चर्चा आवश्यक है। पूरे ओड़िसा प्रांत में विलय को लेकर स्थिति बिगड़ी थी और इसका असर दूसरे प्रांतों पर पड़ने की आंशका थी। इसको लेकर स्वयं सरदार पटेल और मेनन चिंतित थे। यह तय हुआ था कि विलय की प्रक्रिया ओड़िसा से ही की जाये। पहले कटक की बैठक में सिर्फ मेनन को जाना था लेकिन बाद में सरदार पटेल ने भी जाने का निर्णय लिया। इसके पीछे कारण था कि सरदार पटेल किसी भी कीमत पर ओड़िसा के रियासतों का विलय आसानी से शांतिपूर्ण तरीके से कराना चाहते थे। इसलिए 13 और 14 दिसंबर 1947 की बैठक में सरदार पटेल ने कहा था कि मेरे सुझाव मानिये। फिर भी अगर आप न माने तो स्थिति बिगड़ने पर आप जब दिल्ली आयेंगे तब तक काफी विलंब हो जायेगा। अंततः सभी राजाओं ने विलय का फैसला कर लिया था। कटक की बैठक में बिहार प्रांत के भी प्रतिनिधियों ने भाग लेने की इच्छा व्यक्त की थी क्योंकि बिहार के कुछ हिस्सों को भी

ओड़िसा में शामिल किया जा रहा था। विलय के दौरान खरसावां के तत्कालीन राजा का क्या रूख रहा था, इस पर जिक्र आज तक सिर्फ मेनन ने अपनी पुस्तक "द ओड़िसा एंड छत्तीसगढ़ स्टेट्स" में किया है। इस किताब में मेनन ने लिखा है खरसांवा के राजा ने बैठक में कहा था कि उनका स्टेट बिहार के सिंहभूम जिले से घिरा हुआ है और आदिवासियों को इस बात की चिंता है कि उनका विलय उनके प्रांत में ही होना चाहिए। मेनन ने आगे लिखा है कि राजा की बात सुनने के बाद उन्होंने कहा था कि पहले विलय की प्रक्रिया पूरी कर लीजिए, फिर लोगों से बात कर यह तय किया जायेगा कि वे ओड़िसा में रहना चाहते हैं या बिहार में। मेनन (जो विलय प्रक्रिया के प्रभारी थे) की किताब पर अगर विश्वास किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि खरसावां राजा ने कटक की बैठक में आदिवासियों द्वारा बिहार में विलय करने की मांग को उठाया था। आदिवासियों की बात को तर्क के साथ रखा था खरसावां स्टेट्स की ओर से राजा श्री राम चंदर सिंह देव ने हस्ताक्षर किया था। वे जिस कार से हस्ताक्षर करने कटक गये थे, आज भी वह कार खरसावां के राजा के महल में पड़ी है। उनके साथ युवराज प्रदीप चंद्र सिंह देव भी गये थे।

विलय प्रक्रिया के अनुसार 1 जनवरी, 1948 को सत्ता सौंपना था। इसी बीच विलय के विरोध में आंदोलन शुरू हो गया। झारखंड आंदोलन भी चल रहा था, जयपाल सिंह ने ओड़िसा में विलय का विरोध किया था वे बिहार के साथ जाना चाहते थे। जयपाल सिंह दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि बिहार के हिस्से को काटकर झारखंड राज्य बनाने की मांग चल रही है और इसके लिए आंदोलन चल रहा है। आज नहीं तो कल यह मांग पूरी होगी ही, लेकिन अगर सरायकेला और खरसांवा का ओड़िसा में विलय हो जाता है तो बाद में किसी भी हालत में उसे अलग झारखंड राज्य में शमिल नहीं किया जा सकता। हुआ भी यही, उनके आंदोलन के 50 साल बाद जब झारखंड बना तो सिर्फ बिहार को काट कर ही, जबकि ओड़िसा, बंगाल और मध्य प्रदेश के भी कुछ हिस्से को काटकर झारखंड में शामिल करने की मांग की जा रही थी अगर उन दिनों सरायकेला-खरसावां को ओड़िसा में शामिल कर लिया गया होता तो इन दोनों का भी हाल मयूरभंज, क्योंझर जैसा होता यानी ये ओड़िसा में ही रहते।

उन दिनों देश की राजनीति पर बिहारी नेताओं की पकड़ काफी मजबूत थी। डा. राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे। श्री कृष्ण सिंह भी काफी मजबूत थे, बिहार के सारे नेता भी आदिवासियों की मांग से सहमत थे कि सरायकेला-खरसावां को बिहार में ही रहना चाहिए, उस समय उनके दिमाग में सिर्फ ओड़िसा और बिहार में से किसी एक को चुनने की बात थी जबकि जयपाल सिंह बिहार के साथ रहकर बाद में झारखंड लेने तक की सोच रहे थे।

अंततः जयपाल सिंह और अन्य नेताओं ने 1 जनवरी, 1948 को पावर का हस्ताक्षर होने का विरोध करने का निर्णय लिया था। झारखंडियों से अपील की गयी थी कि वे खरसांवा

पहुंचे। जयपाल सिंह के आह्वान पर 50 हजार से ज्यादा लोग पारंपरिक हथियारों के साथ खरसावां पहुंचे थे। रांची, सिमडेगा, खूंटी, तमाड़, चाईबासा, सिंहभूम के दूर-दराज के लोग भी पहुंचे थे अधिकांश लोग ट्रेन से आये थे।

जानकार बताते हैं कि ओड़िसा सरकार ने पूरे खरसांवा को छावनी में तब्दील कर दिया था। झारखंड के आदिवासी किसी भी कीमत पर ओड़िसा में विलय नहीं चाहते थे। इन्हें बिहारी नेताओं का समर्थन भी था, अंततः दोपहर में हल्की झड़प शुरू हो गयी। ओड़िसा मिलिट्री पुलिस ने फायरिंग शुरू कर दी, मशीनगन से फायरिंग की गयी, दो हजार से ज्यादा लोग मारे गये, चारों ओर लाशें पड़ी थीं। प्रत्यक्षदर्शी बताते हैं कि जैसे ही फायरिंग शुरू हुई कुछ तो लेट गये ताकि गोली नहीं लगे वे ही बच गये, बाकी मारे गये। कौन लेटा हुआ था, कौन मारा गया था पहचान करना मुश्किल था। राज परिवार का कहना है कि जिस समय गोली चली, वे लोग अपने महल में थे और जब राजा ने बाहर निकलने का प्रयास किया तो ओड़िसा पुलिस ने रोक दिया और नहीं जाने दिया।

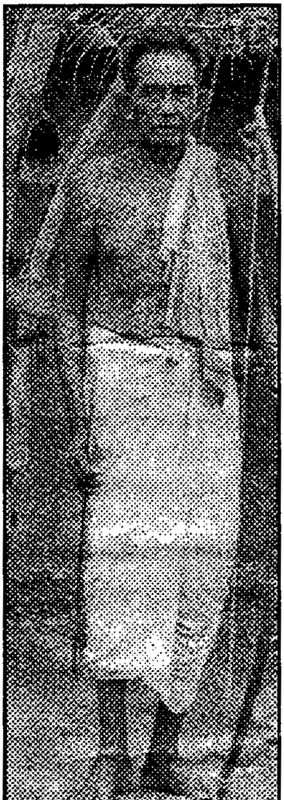
गोलीकांड के बाद पूरे देश में हंगामा हुआ। आजादी के बाद यह देश का सबसे बड़ा गोलीकांड था, विलय के विरोध में यह घटना घटी, इसलिए सरकार भी इस मामले को दबाना चाहती थी ताकि दूसरे जगहों पर हिंसा की घटना नहीं घटे। जांच के लिए ट्रिब्यूनल बना लेकिन उसकी रिपोर्ट कहां गयी, पता नहीं चला। इस घटना के बाद एक तरह से ओ ड़िसा की पुलिस ने खरसावां को खाली कर दिया था।

पुलिस के प्रति काफी आक्रोश था। इस घटना के कुछ माह बाद ही ओड़िसा के तमाम विरोध के बावजूद सरायकेला, खरसांवा को बिहार में शामिल कर लिया गया और जब बिहार का विभाजन हुआ तो वह स्वतः झारखंड में आ गया। इस तरह हजारों गुमनाम आंदोलनकारियों की शहादत के बाद आज सरायकेला, खरसांवा झारखंड में है। हर साल झारखंडी जनता 1 जनवरी को अपने शहीदों को नमन कर नये साल की शुरूआत करती है।

आज उसी खरसावां का एक व्यक्ति यानी अर्जुन मुंडा झारखंड की गद्दी संभाल रहे हैं। लोगों की अपेक्षाओं बढ़ी है। खरसावां के शहीदों के परिजनों के दर्द को जितना करीबी से अर्जुन मुंडा महसूस कर सकते हैं दूसरा जनप्रतिनिधि शायद नहीं। इसी कारण लोगों की अपेक्षाएं बढ़ी है। इसी शहीद स्थल से राजनीति शुरू करने वाले सूर्य सिंह बेसरा भी हर साल शहीदों को याद करने पहुंचे हैं। लोगों को भरोसा है कि खरसावां की तस्वीर बदलेगी और यहां के लोगों को वह सम्मान जरूर मिलेगा।

झारखंडी इस मामले को इसलिए भी उठाना चाह रहे हैं क्योंकि अब अलग झारखंड राज्य का गठन हो गया है। इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि कितने लोग मारे गये थे, वे कौन लोग थे ताकि अगर झारखंड के शहीदों के परिजनों को सरकार सहयोग देती है तो उससे वे वंचित न हो। यह अलग बात है कि खरसावां गोलीकांड में जो घायल हुए थे, उनमें से कई तो जीवित है लेकिन उन्हें एक पैसा का भी सरकार ने सहयोग नहीं दिया

है। उम्र के अंतिम पड़ाव पर पहुंचे ऐसे लोगों को भरोसा है कि आज नहीं तो कल, उन्हें सम्मान अवश्य मिलेगी। वे जमीं पर रहकर फलक पर कयाम करते हैं, कटा के अंगुली शहीदों के नाम करते हैं। किसी मशहूर शायर का शेर आज झारखंड आंदोलन तथा अलग राज्य दिलाने के नाम पर सत्ता सुख हासिल करने वाले नेताओं पर सटीक प्रतीत होता है। जिन्होंने झारखंड के लिए कुछ भी नहीं गंवाया उन्हें सारी सुख सुविधाएं उपलब्ध है, जबकि झारखंड अलग राज्य के लिए खून देने वालों को लाल बत्ती तो क्या लाल कार्ड भी उपलब्ध नहीं है। यह कहना है 1 जनवरी, 1948 के चश्मदीद गवाहों का।


दशरथ मांझी

दशरथ मांझी – सरायकेला के भूरकुली निवासी 75 वर्षीय दशरथ मांझी। श्री मांझी ने सरायकेला, खरसांवा को तत्कालीन बिहार में शामिल करने के लिए हुए आंदोलन में भाग लिया था। उनकी जुबान वीरता की शौर्य गाथा कहते हुए कांप जाती है। आज झारखंड राज्य के निर्माण की बातें सुनकर फिर से जीर्णशीर्ण बरबस वीरता का बखान करने को आतुर हो जाता है। आज जब राज्य की सत्तारूढ़ राजग सरकार खुशहाल भविष्य के सपने बुन रही है वहीं दशरथ मांझी की तरह कई ऐसे गुमनाम शहीदों का जिक्र तक नहीं होता है। जो आंदोलन के दौरान अपाहिज हो चुके हैं। झारखंड राज्य के आंदोलनकारियों के प्रति पूर्ण निष्ठा रखने वाली राजग सरकार को इनकी कोई सुध नहीं रही। झारखंड प्रांत ने अपने गुमनाम आंदोलनकारियों की कृतज्ञ अश्रुपूरित नेत्र जुल्म और यातनाओं के दौर को अतीत के झरोखे में तलाशती है, तो अपाहिज और बूढा शरीर भी साथ नहीं देता। दुबला-पतला शरीर, अक्सर बीमार रहते, परंतु आवाज में बुलंदी और स्मरण शक्ति भी काफी मजबूत। उनकी 65 वर्षीय पत्नी तुलसी मजदूरी कर जीवनयापन करती है। अपने भूरकुली स्थित पैतृक आवास में बातचीत करते हुए कहा कि जब भारत आजाद हुआ तो उनकी उम्र 20 वर्ष थी। उस समय वे जमशेदपुर में नौकरी करते थे। सप्ताह में 10 रूपये 75 पैसे मिलते थे। 1 जनवरी, 1948 को नववर्ष की खुशियां मनाने एवं मकर पर्व के कारण घर आना हुआ। इसी बीच लोगों से जानकारी मिली की झारखंड अलग राज्य आंदोलन के पुरोधा जयपाल सिंह के नेतृत्व में खरसावां हाट मैदान में सरायकेला-खरसावां को ओड़िशा में शामिल करने के विरोध में तथा बिहार में शामिल करने की मांग में एक आम सभा का आयोजन किया गया है। यह खबर सुनने से इच्छी जगी और तभी जाने का कार्यक्रम बनाया। जब वहां पहुंचे, तो उनका नेतृत्व कर रहे झारखंड

पार्टी के वरीय नेता प्रसन्न मुर्मू ने उन्हें मैदान में डटे रहने की हिदायत दी। मकर पर्व का हाट था। इसलिए काफी तादाद में वहां लोगों की भीड़ जमा थी। अचानक खबर मिली कि किसी कारणवश जयपाल सिंह नहीं आ सके। अचानक भीड़ में काफी इजाफा हुआ। मरांग गोमके के न पहुंचने के कारण भीड़ अनियंत्रित हो रही थी। इसी दौरान भीड़ ने राजा को एक ज्ञापन सौंपने का निर्णय लिया जिसमें क्षेत्र को ओड़िसा में शामिल करने का विरोध किया गया था। लाखों की तादाद में भीड़ राजावाड़ी की ओर कूच करने लगी। इसी दौरान वहां तैनात ओड़िसा मिलिट्री के जवानों ने भीड़ को रोकना चाहा। लेकिन आंदोलन पर उतारू लोगों का जोश इस कदर बढ़ा हुआ था कि वे किसी भी बाधा को पार करने के लिए आतुर थे। विरोध कर रही पुलिस पर तीरों की बौछार होने लगी। पांच पुलिस कर्मी आंदोलनकारियों के तीरों का शिकार होकर गिर गये। अनियंत्रित भीड़ पर काबू पाने में विफल पुलिसकर्मियों ने भीड़ पर गोलियां चलानी शुरू कर दी। चंद पल में लाशों के ढेर मानवता के हाथों कुकृत्य की कहानी बनकर रह गये। इसी बीच एक गोली दशरथ की अंतड़ियों को छेद करती हुई निकल गयी। असहाय पीड़ा के बावजूद वे भय से एक पेड़ के नीचे लाश बनकर पड़े रहे। लाश की तरह उन्हें घसीटकर खरसावां थाना लाया गया। प्राथमिक उपचार के बाद उन्हें सरायकेला अस्पताल ले जाया गया। बाद में तीन माह तक उनका उपचार कटक के एक अस्पताल में किया गया। जब उन्हें कटक अस्पताल से छुट्टी मिली, तो प्रशासन की ओर से उन्हें दस रूपये घर जाने के लिए मिले थे। जब काफी इंतजार के बाद अलग राज्य बना, तब यह पल दशरथ के लिए दूसरी आजादी से कम नहीं थी।

दशरथ को उम्मीद थी कि कम से कम सरकार की ओर से उन्हें सम्मान तो मिलेगा। छः वर्ष बाद भी राज्य के सत्तारूढ़ राजग सरकार के मंत्रियों को ऐसे लोगों के लिए फुर्सत नहीं है। हालांकि खरसावां के भाजपा विधायक अर्जुन मुंडा द्वारा राज्य के सत्ता की सर्वोच्च पद पर आसीन होने के पश्चात उन्होंने खरसावां शहीद स्थल को राजकीय स्मारक के रूप में विकसित करने की घोषणा की है। जल्द ही इस दिशा में काम भी होने वाले हैं। अलग राज्य बनने के बाद 1 जनवरी, 2001 को खरसावां में आयोजित प्रथम शहीद दिवस समारोह सम्मानित किये थे। श्री मांझी को किसी से कोई शिकायत नहीं है। राज्य के मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा द्वारा झारखंड राज्य के आंदोलनकारियों के ऊपर से उठाये गये मुकदमों को श्री मांझी एक ऐतिहासिक कार्य बताते हैं। साथ ही कहते हैं कि मुख्यमंत्री हर वर्ष एक जनवरी को खरसावां शहीदों को श्रद्धा सुमन अर्पित करने आते हैं। लेकिन आखिर किस वजह से इस कांड में अपाहिज हो चुके लोगों से मिलने वे नहीं आते हैं। सरकार द्वारा उन्हें किसी भी तरह की सुविधाएँ नहीं दी गयी। जिन्हें वास्तव में झारखंड स्वतंत्रता सेनानी का दर्जा मिलना चाहिए वृद्धावस्था पेंशन, लाल कार्ड व इंदिरा आवास योजना के लाभ से भी वंचित है। क्या नयी सरकार को ऐसी लोगों की परवाह है। गोलीकांड की कहानी बयां करते हुए दशरथ मांझी की जुबान लड़खड़ा जाती है और आंखों में पानी आ जाते हैं। इस गोलीकांड के एक और चश्मदीद गवाह है।



साधु चरण बिरूआ

साधु चरण विरूआ — तांतनगर के बड़ा पोखरिया गांव में गुमनामी की जिन्दगी जी रहे साधु चरण विरूआ 1 जनवरी, 1948 को जब खरसावां में गोली कांड हुई थी, एक गोली उनके बांह में लगी थी। यह गोली उनके बांह में 54 साल, 7 महीने, 12 दिन तक फंसी रही और विगत वर्ष वह गोली निकाली गयी। अपनी दर्द बयां करते उन्होंने बताया कि उन्हें पता नहीं था कि उनके बांह में गोली है। उम्र ढलती गयी तो उनके बांह में दर्द व सूजन हुआ। इसके बाद वे जमशेदपुर में चिकित्सक के पास गये और गोली निकलवायी थी।

श्री विरूआ 1 जनवरी, 1948 के गोली कांड को याद करते हुए कहते हैं कि जयपाल सिंह के आह्वान पर वे लोग खरसावां गये थे। उन्हें एक झंडा दिया गया, जिसे वहां गाड़ना था। जैसे ही वे लोग आगे बढ़े पुलिस ने गोलियां चलानी शुरू कर दी। वे आम के पेड़ के नीचे छिप कर लेट गये। बिरूआ जी बताते हैं कि उन्होंने सिर्फ सात जवानों को ही गोली चलाते हुए देखा था। जब तक वे लेटे थे उन्हें कोई गोली नहीं लगी। थोड़ी देर बाद फायरिंग बंद हुई, तो वे अपनी उस थैली को लेने गये, जिसमें 3 सौ रूपये रखी हुई थी। जैसे वे थैली उठाने के लिए झुके मशीनगन से गोलियां चलनी शुरू हो गयी। उनकी तलहटी पर गोली लगी और अंगुली बेकार हो गयी। वे वहीं लेट गये जिससे गोली उनके सिर या सीने में नहीं लगी। एक गोली जमीन से टकरा कर उनके बांह में लगी, जो 54 सालों तक फंसी रही थी।

श्री विरूआ कहते हैं कि पहले गोली में उतना दर्द हुआ कि बाद वाली गोली का पता तक नहीं चला। 54 साल बाद उन्हें मालूम हुआ कि उन्हें एक गोली और लगी थी उन्होंने बताया कि चारों ओर लोगों को मरे हुए पाया। जब फायरिंग रूकी तो वे भागे। ट्रेन पकड़कर वे जमशेदपुर गये।

जमेशदपुर के एमजीएम अस्पताल में उन्होंने अपना इलाज करवाया। इसके बाद वे गांव आये और साठ वर्ष बाद शादी की। श्री विरूआ अपने जीवन जीने का पूरा श्रेय अपनी पत्नी सूत्री विरूआ को देते हैं। कहते हैं कि अगर पत्नी का साथ नहीं होता तो वे आज कहीं सड़ रहे होते। श्री विरूआ को इस बात का मलाल है कि इस आंदोलन के कामयाब होने के बाद भी आज तक आंदोलनकारियों के आश्रितों को कोई सरकारी सहायता नहीं मिली। अपने सहयोगियों के बार में वे बताते हैं कि अब गोलीकांड के समय के बहुत कम ही लोग

बचे हैं। विरूआ अब मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा से मिलना चाहते हैं। उन्हें विश्वास है कि मुख्यमंत्री स्वयं खरसावां गोली कांड के प्रति संवेदनशील हैं और शायद उनकी आवाज को वे सुन लें। उन्हें अब भी भरोसा है कि सरकार की ओर से उन्हें कुछ सहायता जरूर मिलेगी। एक बार वे झामुमो सुप्रीमो शिबू सोरेन से मिले थे। गोली कांड के बाद वे एक बार खरसावां गये थे। फिर कभी नहीं गये।

अर्जुन मुंडा का गहरा जुड़ाव है शहीद स्थल से-

राज्य के निवर्तमान मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा के प्रयास से ही खरसावां शहीद स्थल का जीर्णोद्धार हुआ था और अब वर्ष 2004 में भी श्री मुंडा के निर्देशानुसार खरसावां शहीद स्थल का एक लाख की लागत से सौन्दर्यीकरण भी होगा। मुख्यमंत्री श्री मुंडा 1995 में इसी मजार पर माथा टेक कर ही खरसावां विधानसभा क्षेत्र से झामुमो प्रत्याशी के रूप में नामांकन दाखिल करने गये थे। विधानसभा चुनाव में कांग्रेस के तत्कालीन कांग्रेसी विधायक विजय सिंह सोय को पराजित किया।

जब श्री मुंडा ने इस जीत का श्रेय खरसावां के शहीदों को देते हुए शहीद स्थल का जीर्णोद्धार करने की घोषणा की थी। इसके बाद उन्होंने इस शहीदस्थल का जीर्णोद्धार किया। संगमरमर के पत्थरों से सजाया। सन् 1999 में श्री मुंडा भाजपा में शामिल हो गये।

कल्याण मंत्री बनने के बाद उन्होंने इस स्थल का सौन्दर्यीकरण एवं इसे पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करने की घोषणा की परंतु कल्याण मंत्री के कार्यकाल में वे अपनी घोषणा को अमलीजामा पहनाने में असफल रहे। मार्च 2003 में मुख्यमंत्री बनने के पश्चात पहली बार खरसावां आने पर उन्होंने खरसावां शहीद स्थल को राजकीय स्मारक के रूप में विकसित करने की घोषणा की। परंतु अब तक इसे अमली जामा नहीं पहनाया गया। इसी माह ही खरसावां शहीद स्थल के सौन्दर्यीकरण के लिए लाख रूपये की स्वीकृति दी गयी है।

खरसावां गोली कांड को याद कर के आज कल भी आदिवासी अपना पर्व त्योहार में दुरङ (गाना) किया जाता है। आदिवासी गाना में पूरी घटना का विवरण शामिल रहता है। पूरी घटना का इतिहास भी मिलता है। हो लोकगीत के रूप में यह गीत उल्लेख मिलता है।

(अनुज कुमार सिन्हा)

साभार-प्रभात खबर

❖❖

खरसावां गोली कांड (राग-मागे)

हाट मीटिंञ हुन्डि लेन को
अयेर तयोम तिंगुलेन को
टेर अरिल लेका याको बटि चबा यान ।।2।।

ओकय एञ अपं मेने
ओकय बारे मिसिं मेने
हेर अरिल लेका चाको बटि चना यान।।2।।

ओकय कटा बंडिः आकन
ओकय तिड़ि तोपां आकन
ओकय अमो अंयञो ओकय कको नेपेल तान।। 2।।

मयोम लिंगि सेनोः यना
जिड़ि जीवन सेनोः याना
ओकय अमो अयंञो ओकय कको नेपेल तान।। 2।।

ओकय बोःम बंडिः जना
ओकय मयां बंडिःजना
हाय रे ताञ हागा मिसि कको नेपेल तान।।2।।

ओकय मेड़दःअ जोरोय तना
ओकय हाय-हाय मेने ताना
हाय रे ताञ हागा मिसि कको नेपेल तान।।2।।

एंगा अपु बंगई याना
कुमा काका बुगई याना
हाय रे ताञ माड़ा मुर्दा कारेंञ नेलाडा।।2।।

दुलड़ हगा मिसि कोते
हेन्दे एसेल-बेरेल कोते
खरसावां उलि बगान बेरेअ चला लेन।।2।।

बुढ़ा-बुढ़ी हगा कोते
हतु मुतिड बाला कोते

खरसावां उलि बगान पेरेअ चबा लेन।।2।।
ओते हसा कबू एमे
दिरि दरू कबु एमे
उड़िसा ते कबु सेनोः नेया जगार लेना।।2।।

मीटिंग होबा लेना तलां
विचार होबा लेनाःतलां
होड़ो मुन्डा मिडेनाबु नेया जगार लेन।।2।।

उलि बगान हाट तांडि
कुटि मुलि पेरे तांडि
जय झारखंड जय झारखंड मेत्ते कोरङ लेन।।2।।

पेरे याकन हगा मिसि
पईरा कन हिसी हिसी
जय जयपाल जय जयपाल मेत्ते कोरङ लेन।।2।।

तिकिन तरा सिंगी उलं
हाट रगो बगो उलं
उड़िया सरकार तोप गोली बदुंए चलाव लेड़ ।2।।

राजा बंगला दोकल लेना
खरसावां गोटा कोरङ लेना
उड़िया सरकार तोप गोली बुंदुए चलाव लेड़ ।।2।।

+++

अध्याय 15

गुवा गोलीकांड

8 सितबर, 1980 का दिन और ठीक 23 साल पहले आज का ही दिन किसी झारखंडी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि आजाद भारत में भी जालियांवाला बाग जैसी घटना घट सकती है। लेकिन ऐसी घटना घटी और इसे अंजाम दिया बीएमपी के जवानों ने। गुवा का सदर अस्पताल आज भी इसका गवाह है। पुलिस की गोली से घायल आदिवासियों को जब गुवा के अस्पताल में इलाज के लिए ले जाया गया था तो वहां आठ आदिवासियों को लाइन से खड़ा कर गोली मार दी गयी थी। खरसावां गोलीकांड के बाद उस समय यह झारखंड का सबसे बड़ा गोलीकांड था। इस गोलीकांड में 11 आदिवासी और 4 बीएमपी के जवान मारे गये।



भुवनेश्वर महतो

गुवा गोलीकांड के पहले पुलिस ने ईचाहातु और सेरेंगदा के आंदोलनकारियों में पांच लोग मारे गये थे। प्रशासन किसी भी तरह जंग आंदोलन को दबाना चाहती थी। गुवा गोलीकांड में आंदोलनकारियों की ओर से नायक के रूप में उभरे थे चक्रधरपुर के भुवनेश्वर महतो, सूला पूर्ति, सुखदेव हेब्रम और बहादुर उरांव, उन दिनों सिंहभूम में जंगल आंदोलन चल रहा था। इसकी अगुवाई देवेन्द्र मांझी, शैलेन्द्र महतो, शूला पूर्ति, मोरा मुंडा, मछुआ गागराई, लाल चंद मुंडा कर रहे थे। साल की जगह सागवान पेड़ लगाने के विरोध में जंगल काटा जा रहा था। इसे रोकने के लिए पुलिस ने सारंडा और कोल्हान के जंगलों में बीएमपी को उतारा था।

जंगल आंदोलन के दौरान गुवा पुलिस थाना क्षेत्र में 35 और गोइलकेरा थाना क्षेत्र में 159 आंदोलनकारियों को गिरफ्तार किया गया था। इसका विरोध किया जा रहा था। गुवा

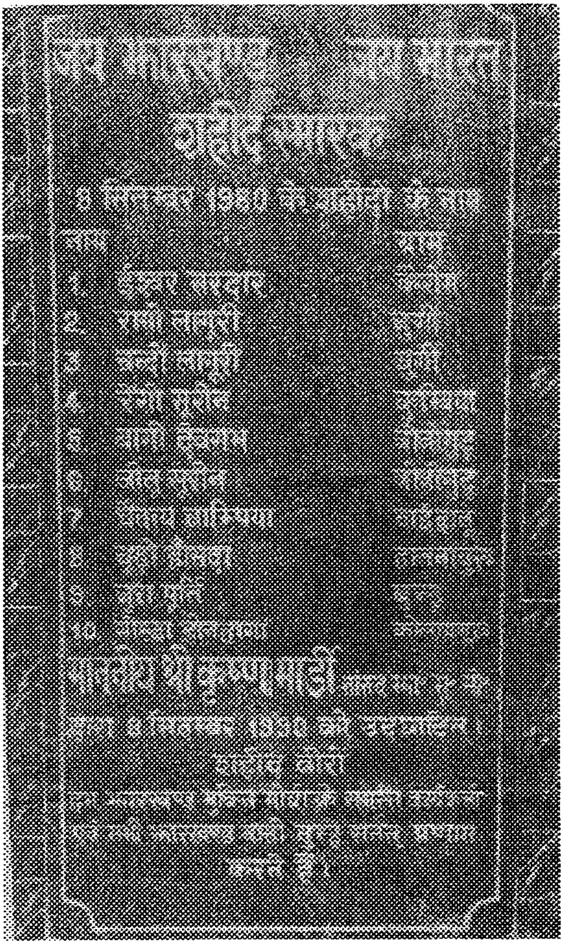


बहादुर उरांव

माइंस में स्थानीय बेरोजगारों को नौकरी देने में उपेक्षा की जाती थी। इन सब मुद्दों को लेकर झारखंड मुक्ति मोरचा ने गुवा में जिला स्तरीय प्रदर्शन की घोषणा की थी। दो साल पहले ही सिंहभूम में झारखंड मुक्ति मोरचा का गठन किया गया था। पुलिस इस प्रदर्शन को किसी भी कीमत पर सफल नहीं होने देना चाहती थी। अधिकारियों को सूचना दी गयी थी कि आंदोलनकारियों ने गुप्त बैठक कर प्रदर्शन के दौरान गुवा थाना और रेंजर आफिसर पर हमला करने की योजना बनायी है। गुवा के प्रभार में प्रतिनियुक्त दंडाधिकारी एल. कुजूर ने यह सूचना दी थी। उन्होंने सूचना दी थी कि इस प्रदर्शन में चाईबासा, चक्रधरपुर, सोनुआ, गोइलकेरा और मनोहरपुर से भी लोग शामिल हो सकते हैं। इसी को आधार बनाकर पुलिस ने पहले से ही सारी व्यवस्था कर ली थी। बीएमपी को तैनात किया गया था। एल.आर. डी.सी. फ्रांसीस डीन को गुवा के प्रभार में दंडाधिकारी नियुक्त किया गया था। उनके साथ बेलफेयर इंस्पेक्टर जे. लकड़ा, किरीबुरू के एस.डी.पी.ओ., बी. तिर्की, नुवामुंडी के इंस्पेक्टर आयरन सिंह भी थे।

भुवनेश्वर महतो और बहादुर उरावं चक्रधरपुर से आ रहे आंदोलन कारियों के साथ थे। श्री महतो बताते हैं कि सभी प्रदर्शनकारियों को गुवा एरोड्राम में जमा होना था। ढाई बज रहे थे। पांरपरिक हथियारों और नगाड़ा के साथ सभी वहां जमा हो रहे थे। चारो ओर से वहाँ प्रदर्शनकारी जमा होने लगे थे। उनके अनुसार चूँकि वहां धारा 144 लागू नहीं किया गया था इसलिए सभा को रोकना गलत था। जबकि पुलिस के अनुसार सात सितंबर को ही वहां निषेधाज्ञा लागू कर दी गयी थी।

घटना को याद करते हुए भुवनेश्वर महतो और बहादुर उरांव बताते हैं कि जैसे ही जुलूस एरोड्राम से बाहर निकला, पुलिस ने चारो ओर से उसे घेर लिया और आगे बढ़ने से रोका, पास में ही एक ओड़िया स्कूल है। वहीं पर अधिकारियों ने जबरन ज्ञापन ले लिया, पुलिस मान चुकी थी कि अब प्रदर्शन शायद नहीं हो। लेकिन चारो ओर से आंदोलनकारी आगे बढ़ रहे थे पुलिस पर वे भारी पड़ने लगे और अंततः आंदोलनकारी थाना से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित गुवा हाट की ओर रवाना हो गये। किसी ने बाद में रोकने की हिम्मत नहीं की। भुवनेश्वर महतो और बहादुर उरांव घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे। वे बताते हैं कि 23 साल पहले घटना के दिन वहाँ छोटा सा मंच बनाया गया था। अभी की तरह वहाँ



गुवा में शहीद स्मारक जिन पर शहीदों का नाम लिखा है

दीवार नहीं था। दुकानें भी कम थी। सुखदेव हेब्रम, सिद्धू जामदा, ललित हेब्रम भी पहुंच चुके थे। भाषण शुरू हुआ और बहुत अच्छी सभा हो रही थी। कोई उत्तेजना नहीं थी। बेशाखू गोप स्थानीय नेता थे। उन्होंने जरूर आक्रामक भाषण दिया था। सभा को खत्म होने में कुछ समय ही बाकी था कि पुलिस ने भुवनेश्वर महतो को पकड़ लिया और जीप में बैठाने लगी। उन दिनों भुवनेश्वर महतो कॉलेज के छात्र थे। उनके साथ बैशाखू गोप को भी पुलिस ने पकड़ लिया। एक ओर से भुवनेश्वर महतो को पुलिस खींच रही थी। दूसरी ओर से आंदोलनकारी उन्हें छुड़ाना चाह रहे थे। पुलिस और आंदोलनकारियों के बीच धक्का-मुक्की वहीं से शुरू हो गयी। महतो गिरफ्तार होने वाले पहले व्यक्ति थे। उस समय माइक पर बहादुर उरावं भाषण दे रहे थे। इसके बाद पुलिस द्वारा घोषणा की जाती है कि बाकी नेता समर्पण कर दे। वरना गिरफ्तार किया जायेगा। उस समय सूला पूर्ति और सुखदेव हेब्रम भी मौजूद थे।

गुवा गोली कांड का जिक्र करते हुए भुवनेश्वर महतो कहते हैं कि पुलिस की मंशा ठीक नहीं थी। पहले ही तय कर लिया गया था कि इस बार अगर आंदोलन होगा तो फायरिंग से दबा दिया जाये तो फिर आवाज नहीं उठेगी। पुलिस फायरिंग पर आमादा थी। बहादुर उरांव उस घटना को याद करते हुए कहते हैं कि जिस जगह पर सभा हो रही थी, वहाँ जाने और निकलने का एक ही रास्ता है। पुलिस निकलने के रास्ते को जाम कर चुकी थी। खुद समझ गये थे कि आज फायरिंग हो जायेगी, इसलिए वे सभा में मौजूद लोगों को सभा खत्म करने के लिए समझा रहे थे। कुछ लोग सभा को चालू रखने पर अड़ गये थे।

बहादुर उरांव बताते हैं कि वहां बीएमपी के जवान तैनात थे। पुलिस उन्हें (श्री उरांव को) गिरफ्तार करना चाह रही थी। उन्होंने कहा कि आंदोलनकारी अगर कहेंगे तभी वे गिरफ्तार होंगे वरना नहीं। उन्होंने माईक से कहा कि क्या वे आत्मसमर्पण कर दें, भीड़ ने कहा नहीं। इसके बाद मामला गरम हो गया। भीड़ अनियंत्रित हो रही थी। पुलिस और भीड़ आमने-सामने हो गयी थी इतना करीब कि बीएमपी के राइफल आंदोलनकारियों के शरीर से सटने लगे थे। आंदोलनकारी भी तीर-धनुष और कुल्हाड़ी, फरसा से लैस थे। इसी धक्का-मुक्की में बीएमपी के जवानों ने आँसू गैस के गोले दागे फिर तीर चले और फायरिंग शुरू हो गयी। फिर क्या था, आंदोलनकारियों ने मोरचा ले लिया और जो आंदोलनकारी बीएमपी के पास थे, उन्होंने बीएमपी के जवानों पर कुल्हाड़ी से हमला कर दिया। पुलिस फायरिंग कर रही थी और आंदोलनकारी तीर की वर्षा। तीन आंदोलनकारी तो वहीं पर मारे गये। बीएमपी के जवानों को भी तीर लगा। कुछ जवानों के चेहरे को आंदोलनकारी ने फरसा से काट दिया। आँखों को क्षतिग्रस्त कर दिया। दो सिपाही व एक जमादार वहीं पर मारे गये। प्रत्यक्षदर्शी बताते हैं कि बीएमपी के जवानों के शरीर का कोई हिस्सा बगैर तीर के नहीं था।

तीर की वर्षा होते देख बाकी जवान भाग गये। वहाँ पर पुलिस ने पहली बार तीस चक्र गोलियां चलायीं, फिर 20 चक्र फायरिंग की गयी। दो जवान तो भागते वक्त गली में मारे गये। पुलिस के अनुसार, उसने पहले टीयर गैस के गोले छोड़े, लाठी चार्ज किया। इसके बाद गोली चलायी गयी। मारे गये जवानों के राइफल को भी आंदोलनकारियों ने लूट लिया।

इधर घायलों को इलाज के लिए कुछ को गुवा अस्पताल ले जाया गया। तीन आंदोलनकारी तो गुवा हाट में ही मारे गये थे। ईश्वर सरदार नामक आंदोलनकारी बाकी घायलों को लेकर गुवा अस्पताल गया था। बहादुर बाबू बताते हैं कि ईश्वर सरदार वास्तव में बहादुर था। खतरा जानने के बावजूद वह घायलों को लेकर अस्पताल गया और वहीं पर पुलिस की गोली का शिकार हो गया। आंदोलनकारियों के अनुसार अस्पताल में कहा गया कि पहले तीर बाहर रखो, तब इलाज होगा। इसी बीच जामदा से जीआरपी और हथियार को गुवा स्टेशन लाया गया। बहादुर उरांव के अनुसार, पुलिस गुवा स्टेशन से फायरिंग करते हुए आ रही थी। लोग भयभीत थे। इलाज कराने अस्पताल गये आठ आंदोलनकारियों को पुलिस ने पकड़ा, उनका तीर बाहर रखवा लिया। इसी बीच बीएमपी के कुछ और जवान वहाँ पहुंच गये। इनमें से एक जवान ने कहा कि इन्हीं लोगों ने उनके भाई को मारा है, मारो इन्हें। इसी के बाद बीएमपी के जवान राइफल के कुंदे से पीटने लगे। फिर अस्पताल के बाहर दीवार से सटाकर लाइन से खड़ा कर आठ आदिवासियों को गोलियों से भून दिया गया।

सिंहभूम के इतिहास में यह सबसे बड़ी घटना थी। पूरे देश में जालियावाला कांड के बाद ऐसी घटना नहीं घटी थी। अस्पताल से खींचकर गोली मारने की यह पहली लोमहर्षक घटना थी। यह झारखंड का जालियांवाला बाग कांड था। बेहरा बलमुचू नामक एक व्यक्ति उस दिन अस्पताल में भरती था। उसने जोजोगुटू के ग्रामीणों को जानकारी दी थी कि पुलिस

ने लाइन में खड़ा कर आदिवासियों को गोली मारी थी। इस घटना का जोरदार विरोध किया गया। वहाँ के एसपी को बदल कर रणधीर वर्मा को सिंहभूम का एसपी बनाया गया, विजय कपूर को एसडीओ बनाया गया। चाईबासा, चक्रधरपुर, सोनआ, गोइलकेरा, मनोहरपुर के लगभग 1100 लोगों को पुलिस ने पकड़कर हजारीबाग जेल में बंद कर दिया। तीन दिन बाद झामुमो के तत्कालीन अध्यक्ष विनोद बिहारी महतो, महासचिव शिबू सोरेन (सांसद) और ए.के. राय (धनबाद के सांसद और एमसीसी नेता) गुवा गये।

गुवा में आठ सितंबर 1980 की फायरिंग के बाद पुलिस का आतंक इतना ज्यादा था कि लोग घरों में दुबके रहे। दुकाने बंद रही। पुलिस लूटी गयी राइफलों को खोज रही थी। ग्रामीणों को इतना पीटा गया कि अंततः उन्होंने राइफल को गांव के बाहर फेंक दिया था। झारखंड मांइस मजदूर युनियन के महासचिव कपलेश्वर मुखिया बताते हैं कि वे लोग किनारे से दुबक कर घटना को देख रहे थे। मारे गये आदिवासियों के शवों को पैर पकड़कर खींचा जा रहा था और उन्हें एक के ऊपर एक गाड़ी में लादा जा रहा था। बाद में गुवा में कर्फ्यू लगा दिया गया। दूसरे दिन देवेन्द्र मांझी पहुंचे। वे उस समय विधायक थे। उसी दिन झारखंड मुक्ति मोरचा के सिंहभूम के जिलाध्यक्ष कृष्ण मार्डी भी गुवा आये। श्री मार्डी बताते हैं कि पुलिस जहाँ काले लोगों को देखती थी, पीटना शुरू कर देती थी।

गुवा गोलीकांड के नायक भुवनेश्वर महतो बीते दिनों की याद करते हुए कहते हैं कि उन्हें नयी जिंदगी दी, पुलिस जीप के चालक ने। उस चालक का नाम वह नहीं जानते हैं लेकिन वह चाईबासा के आस-पास का आदिवासी युवक था। भुवनेश्वर कहते हैं कि फायरिंग होने के बाद पुलिस ने उन्हें और बैशाखू गोप को पकड़कर गुवा थाना में बंद कर दिया था। उन्हें बहुत कुछ मालूम नहीं हो रहा था कि बाहर क्या हो रहा है। इस बीच रात्रि में एसपी रामेश्वर उरांव पहुंचे। चूँकि गिरफ्तार लोगों की संख्या सिर्फ दो ही थी इसलिए पुलिस का पूरा गुस्सा उन्हीं दो लोगों पर निकल रहा था। श्री महतो बताते हैं कि रामेश्वर उरांव (एसपी) की जगह और कोई एसपी होता, तो शायद गिरफ्तार लोगों की स्थिति और खराब होती। श्री महतो के अनुसार, जब मारे गये जवानों और आदिवासियों के शव को लेकर अलग-अलग वाहनों में पुलिसकर्मी चाईबासा लौट रहे थे तो रास्ते में बीएमपी के जवानों की एक गाड़ी आ रही थी। एक गाड़ी में भुवनेश्वर महतो और बैशाखी गोप थे। बीएमपी के जवानों ने रास्ते में गाड़ी को रूकवाया और पूछा कि गिरफ्तार आंदोलनकारी कहाँ हैं। वे भुवनेश्वर महतो और वैशाखू गोप को खोज रहे थे। जिस गाड़ी में इन दोनों को ले जाया जा रहा था, उस गाड़ी का चालक चाईबासा का आदिवासी युवक था। उसने बीएमपी की परवाह किये बगैर गाड़ी आगे बढ़ा दी और आगे निकल गया। बाद में उस चालक ने गिरफ्तार लोगों को बताया कि अगर वह गाड़ी नहीं बढ़ाया होता तो शायद दोनों का एनकाउंटर कर दिया जाता। श्री महतो आज भी उस युवक के अहसानमंद है। वे बताते हैं कि बाद में चाईबासा थाना में जब उन्हें बंद किया गया था तो थाना प्रभारी से बीएमपी के जवानों ने हाजत की चाबी मांगी थी लेकिन

थाना प्रभारी ने यह कहते हुए चाबी नहीं दी कि अगर इन दोनों को कुछ हो गया तो कौन फंसेगा। दरअसल थाना प्रभारी भी स्थानीय आदिवासी थे। श्री महतो महसूस करते हैं कि इन दिनों अगर झारखंडी पुलिस कर्मियों का सहयोग नहीं मिला होता तो कई और लोग मारे जाते। भुवनेश्वर महतो हर साल गुवा जाते हैं और शहीदों का नमन करते हैं।

गुवा में जब 8 सितंबर, 1980 को गोली चलने लगी थी उस समय बहादुर उरांव मंच पर ही थे। पुलिस फायरिंग के बाद वे बचते-बचते स्थानीय आंदोलनकारियों के साथ भाग निकले। पहाड़, नदी पार करते हुए रात में वे जोजोगुटू गाँव पहुंचें। 23 साल बाद जब बहादुर बाबू उस गांव में पहुंचे तो उस घर का नामोनिशान नहीं था। गांव वालों ने बताया कि वे उस समय जिस मकान में रात में ठहरे थे वह मकान लखी राम सुंडी का था। अब वे लोग नहीं रहे। वहाँ खेत है। एक पेड़ है जो गवाह है। सुबह-सुबह तीन युवकों ने बहादुर उरांव को पहाड़ होते हुए जोड़ा पहुंचाया था। तीस रूपये भी भाड़े के लिए दिये थे। साथ में मकई भी दिया था। उनमें से एक का नाम लालू सोरेन था। 23 साल बाद अब उसके बाल पक चुके हैं। बहादुर उरांव की उस लालू से मुलाकात इस बार हुई। गले मिले। लालू कहते हैं कि उसने बहादुर उरांव का नाम सुना था लेकिन वह नहीं जानता था कि जिसे वह 23 साल पहले पुलिस से बचाकर जोड़ा पहुंचाया था, वह बहादुर उरावं ही थे। बाद में श्री उरांव विधायक बने। उन्हें इस बात का अफसोस है कि इस गाँव में उन्हें दुबारा आने में 23 साल लग गये। अब वे उस गांव के लिए कुछ करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि इस गांव में अपने पैसे से शिक्षक रखें जो बच्चों को पढ़ा सके। वे बताते हैं कि उस दिन सभा शांतिपूर्वक चल रही थी लेकिन बीएमपी के जवानों ने कहा कि धारा 144 लागू है, आप सभा नहीं कर सकते। आत्मसमर्पण कर दीजिए। श्री उरांव कहते हैं कि अगर सभा करने दी जाती तो कुछ नहीं होता लेकिन पुलिस को एक बहाना चाहिए था गोली चलाने के लिए और उसने उसे ढूंढ़ लिया।

बहादुर बाबू बताते हैं कि अगर उस दिन भुवनेश्वर महतो को गिरफ्तार नहीं किया जाता तो बवाल ही नहीं होता। पुलिस दोपहर से एरोड्रम से आंदोलनकारियों को रोकने में लगी थी और एक तरह से जबरन ज्ञापन को छीन लिया गया था। लेकिन आंदोलनकारियों ने बहादुरी का परिचय दिया। वे जानते थे कि अगर इस बार सभा नहीं करने दी गयी तो भविष्य में कभी सभा नहीं हो सकेगी।

(अनुज कुमार सिन्हा)
साभार-प्रभात खबर

❖❖

अध्याय 16

गंगा राम कालुंडिया : सुवर्ण रेखा का शहीद

3-4 अप्रैल झारखंड के लिए के अविस्मरणीय दिन है। 3 अप्रैल 1982 को सुवर्ण रेखा डैम के खिलाफ गंगाराम कालुंडिया ने चलियामा कार्यालय पर प्रदर्शन का आयोजन किया था और 4 अप्रैल को गोली मार कर उनकी हत्या कर दी गयी। गोली उसी सरकार के नुमाइंदे ने मारी जिसने उन्हें 20 साल पूर्व वीरता का पुरस्कार दिया था। भारत-चीन युद्ध में चीन के खिलाफ अपनी जान की बाजी लगाकर दुश्मनों का छक्का छुड़ाने के कारण गंगाराम कालुंडिया को वीरता का पुरस्कार मिला था।

गोली मारने के बाद उस वीर पुरूष को मरे गीदड़ की तरह घसीटा गया और पूरे चाईबासा तथा कोल्हान इलाके के लोगों से यह कहा गया कि खूंखार अपराधी मारा गया।

गंगाराम कालुंडिया ने क्या अपराध किया था। इसका कोई जवाब सरकार के पास नहीं है। लेकिन लोग बतलाते हैं उनका अपराध। वे यहां के निवासियों को सुवर्णरेखा बहुउद्देशीय परियोजना के खिलाफ संगठित कर रहे थे। विरोध के ठोस तर्क थे उनके पास।

गंगाराम सेना की सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद अपने गांव इलीगढ़ा,जो सिंहभूम जिले के पूर्वी कोल्हान क्षेत्र में पड़ता है, में रह रहे थे। एक दिन उन्हें अखबार के माध्यम से जानकारी मिली कि इस इलाके में सुवर्णरेखा बहुउद्देशीय परियोजना का काम शुरू होगा, जिसके तहत खड़कई और सुवर्णरेखा नदी बांधी जायेगी। इन दोनों बांधों के कारण लगभग 125 गांव नष्ट हो जायेंगे।

जानकारी मिलते ही उन्होंने सच्चाई का पता लगाना शुरू किया। सच्चाई का पता लगते ही उन्होंने लोगों के बीच इसकी बहस शुरू कर दी। कुछ दिनों के बाद यहाँ के लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बांध बनने से मात्र लोग ही नहीं उजड़ेंगे बल्कि यहाँ की उपजाऊ जमीन, हरा-भरा समृद्ध जंगल, कल-कल, छल-छल बहने वाली छोटी जोरिया, धर्म स्थान तथा श्मशान के साथ-साथ जीवन्त संस्कृति भी उजड़ जायेगी। इसलिए तय हुआ कि इसका विरोध किया जाना चाहिए। इसी ठोस तर्क के आधार पर आसपास के गांवों के हजारों लोग संगठित होने लगे। कुछ ने संगठन की खिलाफत भी की। संगठन की खिलाफत करने वालों में मुख्य भूमिका ईचा के राजा ने निभाई । क्योंकि उन्हें इसका बहुत बड़ा फायदा मिलने वाला

था। करोड़ो में मुआवज़ा मिलने वाला था। राजा के इस रवैये से प्रजा दुखी थी। उनकी प्रजा (रैयत) ने भी विरोध करना शुरू किया। राजा को लगा कि गंगाराम का आन्दोलन अगर जारी रहा तो उनकी मिट्टी पलीद हो जायेगी। उनका अस्तित्व भी खतरे में पड़ जायेगा। वे प्रशासन से मिल गये।

इधर गंगाराम और उनके साथियों ने परियोजना कार्यालय चालियामा में प्रदर्शन करने की योजना बनाई। प्रदर्शन की तिथि 3 अप्रैल रखी गयी। लेकिन किसी विशेष कारणवश गंगाराम को जमशेदपुर जाना पड़ा । प्रदर्शन उनकी अनुपस्थिति में हुआ। असम से लगभग तीन हजार लोग शामिल हुए। प्रदर्शन शान्तिपूर्ण पर आक्रामक था। प्रदर्शनकारियों के कार्यालय पहुँचते ही पुलिस के जवानों ने खदेड़ना शुरू किया। कुछ लोग भाग गये। कुछ लोग डटे रहे। उन्हें बुरी तरह पीटा गया। इसी में पुलिस से कुछ लोगों की हाथापाई हो गयी। मार खाकर लोग वापस आये। शाम को गंगाराम लौटे तो लोगों ने अपनी बात सुनाई और यह बतलाया कि पुलिस उनको (गंगाराम को) खोज रही थी। सुनाने वाले लोग ने यह भी कहा हो सकता है कि पुलिस आज गांव पर भी हमला करे इसलिए आप अपने घर मत सोइये। फौजी मानसिकता वाले गंगाराम ने कहा, हमने क्या बिगाड़ा है जो पुलिस हमें पकड़ने आयेगी और अगर आयेगी भी तो हम फरिया लेंगे। आखिर सरकार ने हमें रायफल किस दिन के लिए दी है। लोगों के मना करने के बावजूद वे घर पर सोये लेकिन गांव वाले बेचैन रहे। सबों ने मिलकर रणनीति तय की। दो जगह पहरेदार, नगाड़ा और तीर धनुष के साथ बैठा दिये गये। गांवों में हिदायत दी गई कि नगाड़ा बजते ही सबों को तैयार होकर दौड़ जाना है।

ठीक चार बजे भोर में जब सभी पहरेदार निश्चिंत हो सो गये, तब पुलिस के जवान गांव में पैदल प्रवेश कर गये। प्रवेश करने के बाद लोगों को मालूम हुआ कि पुलिस गांव में घुस आई है। नगाड़ा बजने लगा। नगाड़े की आवाज सुनते ही लोग जमा होने लगे। पुलिस ने चारों तरफ से इलीगढ़ा को घेर लिया। गंगाराम तलवार लेकर घर से निकले। देखा सभी जवान मोर्चा-बन्दी किये हुए हैं। सशस्त्र पुलिस बल के जवानों ने ऊँची आवाज में कहा तलवार रख दो। गंगाराम जी ने कहा आगे बढ़ने की कोशिश की तो तुम लोग को कत्ल कर दूंगा। गंगाराम की इस धमकी पर पुलिस के जवान उत्तेजित हो उठे और निशाना लगाकर पांव में गोली मार दी। गंगाराम गिर गये। गोली की आवाज सुनते ही मारो-घेरो की आवाज आने लगी। लोग भागने लगे।

घायलावस्था में गंगाराम को घसीटा गया। कुंदे से मार-मार कर उन्हें बेहोश कर दिया गया। उन्हें गाड़ी पर लादकर पुलिस भागने ही वाली थी कि सैकड़ों लोगों ने गाड़ी घेर ली। तीन जीप और एक ट्रक पर सवार पुलिस ने आसमानी फायर किया। लोगों पर गाड़ी दौड़ाते हुए वे लोग आगे बढ़ने लगे। भगदड़ मच गई। कई लोग घायल हो गये। अंत में रास्ते में पुलिस वालों ने गंगाराम की बाहें पकड़ी और एक ने पीछे से गोली चला दी ताकि यह साबित किया जा सके कि भागने के क्रम में उन्हें गोली मारी गयी।

(साभार – झारखण्ड एक्सप्रेस)

❖❖

अध्याय 17

गंगाराम कालुन्डिया

इलीगड़ा कोल्हान के तांतनगर प्रखण्ड पोस्ट कोकचो में चाईबासा से 12 किलोमीटर पूरब दिशा में इलीगड़ा गांव अवस्थित है। इस गांव में हो जाति वाले अधिक निवास करते हैं। अन्य जाति के लोग काफी कम है।

इलीगड़ा के पश्चिम में कुज नदी एवं इसके पड़ोसी गांव है मौदा, पुरनियाँ एवं पूरब दिशा में मंझारी प्रखण्ड है। गाँव लगभग 500 एकड़ के जमीन में बसा हुआ है। लगभग 200 घर एवं 1000 की संख्या में इस गांव की आबादी है। गांव के अधिकतर घर कच्चे हैं। कच्चे मकान खपरा एवं पुआल के भी घर हैं। गंगाराम कालुन्डिया साधारण परिवार में आते हैं। इनका मकान कच्चा पक्का है।

इलीगड़ा गांव में एक प्राथमिक विद्यालय है। इसी स्कूल से गंगाराम कालुन्डिया की शिक्षा आरम्भ हुई थी। प्राथमिक शिक्षा के बाद आगे की पढ़ाई के लिए संत जेवियर मध्य विद्यालय, चाईबासा में अपना नामांकन लिया। गरीबी और जिम्मेदारी के दबाव में सिर्फ सातवीं कक्षा तक ही पढ़ सके। वापस अपने गांव लौट आये। परिवार में माता पिता के अलावे छः भाई बहन थे। इतना बड़ा परिवार का खर्च चला पाना माँ बाप के लिए सम्भव नहीं था। मां बाप की जिम्मेदारी का बोझ गंगाराम कालुन्डिया ने अपने कंधे ले लिया। परिवार चलाने के लिए पढ़ाई छोड़ चुका था। खेती-बारी में पूरा ध्यान देने लगा था।कभी-कभी तो मौसम भी साथ नहीं देता। तो गंगाराम कालुन्डिया अपने परिवार का भरण -पोषण के लिए मजदूरी तक करने को तैयार हो जाता। किसी तरह परिवार की गाड़ी चल रही थी। गरीबी की मार से संकट का सामना करना पड़ता था।

गंगाराम कालुन्डिया यौवन अवस्था में कदम रखे। अपने पड़ोसी गांव गंजिया की विरांग कुई से प्रेम विवाह किया था। गंगाराम के परिवार में एक बेटी ने जन्म लिया। बेटी की बाल्यावस्था में किसी अज्ञात बीमारी से मृत्यु हो गई। गंगाराम बेटी की इस अचानक मृत्यु से टूट गया ।

ठीक उसी समय सेना में बहाली का विज्ञापन निकला। गंगाराम अच्छे कद-काठी के साथ हट्टा-कट्टा भी था। गंगाराम ने बहाली का फार्म भरा। शारीरिक जाँच परीक्षा के लिए

बुलावा पत्र आया। शारीरिक जॉच में गंगाराम अयोग्य घोषित किया गया। गंगाराम गरीबी की मार झेल चुका था। अयोग्य घोषित होने पर तिलमिला उठा। अचानक गंगाराम एक पास खड़े सेना अधिकारी का हाथ पकड़ लिया। और जोर -जोर से कहने लगा क्या मुझमें ताकत नहीं है। कई लोगों ने हाथ छुड़ाने का प्रयास किया लेकिन असमर्थ रहे। सभी लोग गंगाराम की ताकत के सामने कमजोर साबित हुए। अन्ततः सेना अधिकारियों ने नियुक्त करने का फैसला लिया। वर्ष 1962 में सेना में बहाल किये गये। सेना में योगदान देने के बाद भी लोगों के बीच अपने ताकत को लेकर काफी चर्चित था।

वर्ष 1970-72 में भारत, बंगला देश की लड़ाई में उन्होंने अपने बहादुरी और ताकत का परिचय दिया। अपनी वीरता दिखाते हुए दुश्मनों को मार गिराया। जीत में तिरंगा भी फहराया। इनकी वीरता के लिए राष्ट्रपति द्वारा गोल्ड मेडल से सम्मनित किया गया।

सेना से सेवा निवृत्त होने के बाद गंगाराम वापस अपने गांव लौटे। सन् 1979 में बिहार सरकार ने 'ईचा खरकई बाँध परियोजना' के सर्वे कार्य के लिए सम्बन्धित अधिकारियों को क्षेत्र में भेजा था। लगभग 126 गांव इस बाँध से प्रभावित हो रहे थे। गंगाराम का पैतृक गांव इलीगड़ा भी विस्थापित हो रहा था। भूतपूर्व सैनिक गंगाराम इस बांध के निर्माण के विरोध में आवाज बुलंद किया। इन्होंने सर्वप्रथम एक समिति का गठन किया। समिति का नाम 'ईचा खरकई बाँध संघर्ष समिति' रखा। गंगाराम इस समिति का नेतृत्व करने लगे। 126 गांव को अपने आंखों के सामने डूबते नहीं देख सकता था। हो जाति के लोगों का संस्कृति, धर्म स्थान आदि का भी अस्तित्व डूबते नजर आ रहा था। गंगाराम शांतिपूर्ण तरीके से अपना विरोध जताना चाहता था। 126 गांव में ग्राम सभा करने लगा। खून खराबी से अलग रख कर विरोध करने के लिए लोगों के बीच जागरूकता लाने का प्रयास किया। एक निर्णायक लड़ाई लड़ने का बीड़ा उठाया।

इनकी विरोध की लड़ाई देख राजनीतिकगण अपने राजनैतिक लाभ के लिए नेताओं ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए लोगों के बीच गलत विचारधारा डालने लगे। ऐसा होने पर संगठित लोग दो दल में बँट गये। गरम दल और नरम दल । नरम दल के लोग गंगाराम के साथ हो लिये।

सन् 1979 -80 में सर्वे अधिकारियों पर गरम दल के लोगों ने हिंसक हमला किये। अधिकारियों को धर दबोच कर सोसो सुनुम (भेलवा तेल) लगाये और मार पीट भी किये। ऐसा करने के बाद गंगाराम के क्षेत्र में छोड़ आये। ऐसा करके गंगाराम को बदनाम करने लगे। उस समय गरम दल का नेतृत्व सिदियु तियु कर रहे थे। बिहार सरकार ग्रामीणों के इस हरकत से तिलमिला उठी। डैम विरोधियों को गिरफ्तार करने के लिए भारी संख्या में पुलिस बल लगा दिये।

गंगाराम ने अपने आन्दोलन को तेज करते हुए नारा लगाया "ओते हसा अबुआ दिकु जारी कबुआ" गंगाराम अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जी जान लगा दिये। सरकार से

उचित पुर्नवास नीति और विस्थापन नीति लागू करने की मांग रखने लगे। बिहार सरकार उचित पुर्नवास नीति के बिना ही विस्थापन कार्य आरम्भ करने लगी। सरकारी दर पर जमीन के बदले पैसा नहीं देना। इस आन्दोलन का मुख्य कारण बना। इनके इस सहयोगी एम.एस. कालुन्डिया, महेश्वर देवगम, सिदियु तियु, जयराम देवराम इस आन्दोलन में बढ़चढ़ कर भाग लिये। संघर्ष समिति का नेता होने के कारण गंगाराम पर पुलिस की नजर हमेशा से थी।

4 अप्रैल, 1982 को दिन 3.30 बजे एस.पी. रणधीर वर्मा ने गंगाराम को अपने पैतृक आवास इलीगड़ा से गिरफ्तार कर लिया। पुलिस बलों की संख्या देख गंगाराम एवं सहयोगियों ने विरोध नहीं किया। पुलिस ने सबसे पहले गंगाराम के बाएं पैर में गोली मारी। फिर अमानवीय तरीके से रस्सी बांधकर घर से बाहर घसीट कर निकाला। इस दृश्य को देख ग्रामीण नगाड़ा डुगडुगी बजाकर लोगों को एकत्रित करने लगे। हुजुम बढ़ने लगी। गांव के गांव लोग जमा होने लगे। सबसे पहले इलीगड़ा से चाईबासा जाने के बीच एक पुल जिसे लोगों ने बरकुन्डिया पुल के नाम से चर्चित था उसे ध्वस्त कर दिया। ग्रामीणों द्वारा पुलिस का रास्ता रोककर और तीर धनुष एवं पत्थर चलाये। बेकाबू होने लगी पुलिस दल। कई पुलिस वाले तीर से जख्मी हो गये। एस.पी. वहाँ से फरार हो गये। पुलिस बल को फायरिंग का आदेश नहीं मिला था जिससे कि हजारों ग्रामीणों की जान जाने से बच गई। बड़ी घटना होने से पहले टल गयी।

गंगाराम को पुलिस जीप में बांध कर घसीटते हुए जिला मुख्यालय चाईबासा ले गयी। इसके बाद उसे तरह -तरह की यातनाएं देने लगे। अन्ततः उसे पुनः टोन्टों गांव ले जा कर एक सितार पेड़ में बांधकर गोली मार दिया गया। पैतृक आवास के अलावे 126 गांव में गोली से मारने की खबर आग की तरह फैल गयी। इस तरह गंगाराम शहीद हो गये। हो समाज में शहीद कहलाये।

परिजनों को लाश सौंप दिया गया। पैतृक आवास में इन्हें दफनाया गया। गंगाराम दो नाम से चर्चित थे। गांव में इनका नाम गंगाराम कालुन्डिया था। जब कि लोग इन्हें राम नारायण कालुन्डिया के नाम से जानते थे। इसी नाम से लड़ाई भी लड़े थे। नौकरी में राम नारायण कालुन्डिया के नाम से बहाली हुई थी। गंगाराम पढ़ाई में तो अच्छा था ही। फुटबाल भी उसी लगन से खेलता था। फुटबॉल का अच्छा खिलाड़ी भी था। इसके अलावा गंगाराम शिकार करने का शौक भी रखता था। अपने साथी मिरन कालुन्डिया के साथ शिकार करने जंगल भी जाता था। उसका निशाना अचूक था। शिकार के साथ-साथ नाच, गान, नगाड़ा, मांदर एवं बांसुरी बजाने में निपुण था।

लोटा गांव में हर साल लगने वाला मेला लगा था। ये मेला दशहरा पूर्णिमा को लगता है। अपने साथी के मिरन कालुन्डिया के साथ लोटा दोसरा गया था। उस मेला में एक लड़की को पसंद करने लगा। उस लड़की का हाथ पकड़ के गीत गाने लगा। एलंग मेतम "एलंग कमः,दोलंग मेतम दोलंग कमः 'हिला न डुला न, नहीं चाले रे दुलड़िया। गंगाराम किसी

की नकल करने में भी माहिर था। इनका बचपन का साथी मिरन कालुन्डिया अभी जीवित है।

माता का नाम स्व.जानकी कुई एवं पिता का नाम रघुनाथ कालुन्डिया था।

रघुनाथ कालन्डिया के तीन पुत्र और तीन पुत्री थी।

क्रमशः सनातन कालुन्डिया, मोरन कालुन्डिया, गंगाराम कालुन्डिया, हीरा कालुन्डिया, पान्डु कालुन्डिया, डिलकी कालुन्डिया थे।

गंगाराम भाईयों में छोटा था।

कपड़ा बाँधकर पोटली बनाकर फुटबॉल बनाता था और खेलता। पिता के साथ हल जोतता था। स्कूल से लौट कर मवेशी चराने जाता था।

(लेखक-डॉ. दमयन्ती सिंकु)

❖❖

अध्याय 18

मछुआ गागराई

मछुआ गागराई का जन्म तेनदः गांव में हुआ था। तेनदः गांव नकटी गांव से राँची चाईबासा मुख्य पथ से तीन किलोमीटर में अवस्थित है। बंदगांव प्रखण्ड में बीहड़ जंगलों से घिरा हुआ है। चारों तरफ से जंगल से घिरा होने के कारण यहाँ का वातावरण काफी सुहाना लगता है। सुबह की पहली किरण निकलते ही चिड़ियों की चीं-चीं से वातावरण काफी रोमांचित करता है। इस गांव से 4 किलोमीटर की दूरी में टेबो घाटी का बीहड़ जंगल होता है। टेबो घाटी अपने आप में एक ऐतिहासिक है। इस टेबो घाटी को काटकर भगवान बिरसा मुन्डा चाईबासा से राँची आने जाने का मार्ग बनाये। इस गांव के किनारे एक विजयी नामक जंगली नदी है जो गांव की शोभा में चार चाँद लगाती है। यहाँ इस नदी में गांव.वालों के अलावे जंगल के जंगली जानवर अपनी प्यास बुझाने आते हैं।

इस गांव में लगभग 40 मकान है। इस 40 मकान में लगभग 300 लोग निवास करते हैं। गांव में शिक्षित लोग काफी कम हैं।

यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय पशु-पक्षी, भेड़-बकरी, मुर्गा, बत्तक एवं जंगल में मिलने वाली छार, केन्दु पत्ता, दतुवन एवं कन्द मूल बेच कर अपनी जीविका चलाते हैं इनका मुख्य पेशा कृषि हैं। पहाड़ों को काट कर सरगुजा, मकई एवं थोड़ा धान बगैरह लगाते है। तेनदः गांव के लोग मुख्य रूप से हो भाषा और मुन्डारी बोलते हैं।

परिवार

मछुआ गागराई के पिता का नाम स्व. सुरा गागराई है। महुआ गागराई दो भाई थे। इनका बड़ा भाई सहायक शिक्षक है। स्व. महुआ गागराई की पत्नी का नाम रंदाय गागराई है। इनका जन्म सन् 1956 में हुआ था। इनका परिवार एक साधारण किसान परिवार था।

स्व. गागराई नकटी से प्राथमिक शिक्षा ही हासिल किये थे। पढ़ाई के साथ-साथ अपने पिता के कृषि कार्य में हाथ बँटाते थे। स्कूल आने से पहले मवेशी चराता था। मवेशी चरा कर लाता उसके बाद स्कूल जाने की तैयारी करता था। प्राथमिक शिक्षा के बाद माध्यमिक शिक्षा के लिए मध्य विद्यालय कराइकेला में दाखिला मिला। परिवार की स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। एक बार गर्मी की छुट्टी में 'वन रोपण कार्यक्रम के तहत' वह भी वन रोपण कार्यक्रम

में हिस्सा लिया। वहाँ के ठेकेदार बी.के. बनर्जी ने मछुआ गागराई को मुंशी का काम सौंप दिया। पूरी लगन और ईमानदारी से काम करने लगा। धीरे-धीरे मछुआ का बी.के. बनर्जी की चालाकी समझने लगा। तय मजदूरी से कम पैसा मजदूरों को देता था। अपने आप में सोचने लगा कि ठेकेदार क्यों कम मजदूरी इन गरीब मजदूरों को दे रहा है। क्यों नहीं बी. के. बनर्जी से बात किया जाए। अपने ठेकेदार से बात करने लगा "सर आप क्यों कम मजदूरी का भुगतान करते हैं।" यह सुन ठेकेदार तिलमिला उठा और एक थप्पड़ मछुआ गागराई के गाल में जड़ दिये। मछुआ के लाख विरोध के बाद भी ठेकेदार कम मजदूरी ही भुगतान करता रहा। अन्ततः मछुआ गागराई मुंशी का काम छोड़कर वहाँ से चला गया।

धीरे-धीरे मजदूरों को संगठित करने लगा। वृक्ष रोपण का काम रोकवा दिया। आन्दोलन का रूप लेने लगा। जल, जंगल, जमीन में हमारा अधिकार है। दिकुओ का नहीं। वन क्षेत्र में जितने भी पेड़ लगे थे सभी पेड़ उखाड़ फेंक उस जगह पर खेती करने लगा। लोग संगठित होने लगे। सभी मजदूर इस आंदोलन में कूद गये। ऐसा होते देख मछुआ गागराई को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस बल लगा दिया गया। जब पुलिस गांव जाता था मछुआ को पकड़ने, तो वो घने जंगल में छिप जाता। स्कूल जाना छोड़ दिया था। जब पुलिस जंगल जाती तो वो गांव में छिप जाता था। इस तरह लुका-छिपी का खेल होते रहा। एक दिन अचानक मछुआ गागराई पुलिस की गिरफ्त में आ गया। पुलिस ने गिरफ्तार कर चाईबासा जेल में डाल दिया। जेल में डालने के पूर्व थाना में पुलिस द्वारा खूब पिटाई किया गया। मछुआ ने जेल से छूटने के बाद और ही उग्र रूप धारण कर लिया।वह चुप बैठने वाला नहीं था। पुलिस उसको ललकार चुकी थी। मछुआ जंगल का लकड़ी काटने का फैसला किया। नेताओं के शरण में गया और मदद की अपील की और पूरे जोश के साथ 'झारखण्ड मुक्ति मोरचा' में शमिल हो गया।

उस समय मनोहरपुर क्षेत्र के साथी स्व. देवेन्द्र नाथ माझी के साथ मिलकर जंगल आंदोलन में शामिल हो गया। महुआ गागराई न्याय प्रिय होने के कारण अन्याय को देख अपनी पढ़ाई भी छोड़ दिया। हर वर्ष की तरह मकर संक्राति के दिन नकटी में मेला लगा था। परम्परा से चली आ रही मेला को पुलिस प्रशासन बंद कराने आयी थी। मेला को बंद कराने में असफल हुए तो हड़िया बेचने वालों से रंगदारी वसूली करने लगे। उस समय मछुआ गागराई मेला स्थल पर मौजूद था। पुलिस द्वारा रंगदारी मांगना देख नाराज हो गया। हस्तक्षेप करने लगा। मेला में आये लोगों के साथ पुलिस कर्मी के बीच झड़प होने लगी। मामला बिगड़ता देख मछुआ लोगों को समझाने बुझाने लगे। बन्दूकें वापस कर दिया गया। मामला शांत होने लगा। कुछ दिनों के बाद अचानक मछुआ पर गलत आरोप लगा कर गिरफ्तार कर लिया। पूर्व की तरह ही इस बार भी पुलिस द्वारा मछुआ पर लाठी बरसाये गये। मार-मार कर अधमरा कर दिया। उसके बाद पुलिस जीप में डाल कर चाईबासा ले जाया गया। चाईबासा जेल पहुँचने के पहले रोड़ा नदी के पास देखा कि मछुआ बेहोश पड़ा

हुआ है उसे बेहोशी हालत में रोड़ो नदी किनारे गाड़ी से फेंक दिया। होश आने के बाद मछुआ मुख्य पथ तक किसी तरह चल कर आया। राहगीरों से बिनती किया मुझे राधे सुम्बई के घर पहुँचा दो। राधे सुम्बई मछुआ का इलाज में किसी तरह की कमी होने नहीं दिया। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने के बाद उसे तेनदः गांव पहुँचा आया।

मछुआ गागराई पूर्णरूपेण 1974में राजनीति में शामिल हो गया। झारखण्ड मुक्ति मोरचा में सक्रिय सदस्य के रूप में काम करने लगा। श्री देवेन्द्र मांझी के साथ "जंगल काटो आंदोलन" में बढ़चढ़ कर भाग लिया पेड़ पौधे काट कर खेती लायक जमीन तैयार करके खेती करना शुरू किया। पोड़ाहाट क्षेत्र के लोगों को वन ग्राम बनाकर पुनः बसाना शुरू किया। साथ ही जंगल हमारा, पेड़ हमारा, जमीन हमारा का नारा बुलंद किया। ग्रामीण जंगल काट कर खेती करने लगा। इस आंदोलन को आगे बढाया। पोड़ाहाट क्षेत्र के जंगल को काटकर नया वन ग्राम बसाया था। जो निम्न है-पपरिदः जोजोगाड़ा, कुलाडोबे सेरेगंदाः कांडेद कटाई एवं राजा कटाई आदि। गोइलकेरा क्षेत्र के नमा वन ग्राम-तलसा दः तुरुवाकोचा इचःलोर, कंदाबुरु तोलसदोम, मेयेम गुन्डा आदि शामिल हैं।

उपर्युक्त गांव में नया वन ग्राम को राजस्व ग्रामखास गांव बनाने के लिए नया जमीन बन्दोबस्ती के लिए एक विशाल आंदोलन किया। नया वन ग्राम में लोग अपने घर बनाये और खेती करे इस तरह का प्रोत्साहन करने लगे।

वर्ष 1977-78 में इस आन्दोलन में गति आने लगी। लोगों के बीच प्रिय नेता बनने लगे। लोगों के बीच मछुआ गागराई की प्रिय बनने की झुकाव देख देवेन्द्र मांझी के साथ अनबन होने लगी। दोनों अलग हो गये।

इस तरह से मछुआ गागराई अपने पार्टी का नामकरण "झारखण्ड मुक्ति मोरचा (एस) देवेन्द्र माझी झारखण्ड मुक्ति मोरचा (डी) में बंट गया। बंटने के बाद दोनों पार्टी कमजोर होने लगी। वर्ष 1988 में मछुआ गागराई "भारतीय जनता पार्टी' में शामिल हो गया। पार्टी बदलने के बाद अपने आंदोलन को जारी रखा।

जंगल के ठेकेदारों से न्याय की लड़ाईयाँ लड़ने वाला, गरीब आदिवासियों को सही मजदूरी दिलाने वाला एवं नया वन ग्राम स्थापित करने वाला मछुआ गागराई को वर्ष 11 दिसम्बर, 1989 में राँची-चाईबासा मुख्य मार्ग में गोली मार दिया गया और मछुआ गागराई शहीद कहलाये।

(लेखक-डॉ. दमयन्ती सिंकु)

❖❖

अध्याय 19

पुलिस ने दिऊं कोड़ा को मारी थी गोली

पुलिस जब गुस्से में होती है और अपराधी को नहीं पकड़ पाती है तो कैसे उसका गुस्सा निर्दोष लोगों पर उतरता है, इसका उदाहरण है बिल्ला फायरिंग। झारखण्ड आंदोलन के दौरान ऐसे तो राज्य में पुलिस फायरिंग की अनेक घटनाएँ घटी हैं लेकिन बिल्ला फायरिंग कुछ अलग है। इस गोलीकांड का रिकार्ड भी नहीं है।



बिल्ला पश्चिमी सिहंभूम में बसा एक गांव है। इसी गांव में सी.आर.पी.एफ. के जवानों ने एक बुजुर्ग दिऊं कोड़ा को गोली मार दी थी। जिस स्थान पर दिऊं कोड़ा को गोली मारी गयी थी उससे एक किलोमीटर दूर सड़क के किनारे उनका स्मारक बनाया गया है जहां हर साल मेला लगता है।

यह घटना 27 मार्च, 1985 की है। बिल्ला कोल्हान जंगल में गोइलकेरा-बऊरकेला पथ पर बसा है। ग्रामीण अपने उपयोग के लिए जंगल से लकड़ी काटा करते हैं, फॉरेस्ट गार्ड इसका विरोध करते थे। इसी क्रम में गांव के ही दो आदिवासी संतरा 18 में लकड़ी काट रहे थे। जंगल आंदोलन के बाद फॉरेस्ट गार्ड भी भयभीत रहते थे। किसी को पकड़ने के लिए अकेले नहीं निकलते थे। वनरक्षकों ने एक संगठन बनाया था और आठ नौ वनरक्षकों ने दोनो ग्रामीणों को पकड़ने के लिए दौड़ाया। ये लोग तुमिर कोड़ा को खोज रहे थे जिसने ग्रामीणों को तंग करने वाले वनरक्षकों की भेलुआ तेल लगाया था। वनरक्षकों द्वारा ग्रामीणों का पीछा किया जा रहा था। इसी बीच उन लोगों ने हल्ला किया तुरंत पूरे गांव के लोग जमा हो गये और उन लोगों ने सोनाराम भदरा समेत दो गार्ड को पकड़ लिया और बांध दिया था। वनरक्षकों को पकड़ने की खबर जब वन विभाग के अधिकारियों को मिली तो रवींद्र कुमार समेत कई अधिकारी गांव आये और वनरक्षकों को छोड़ देने की अपील

की, लेकिन गांव वाले नहीं माने।

अधिकारी रात भर बिल्ला गांव में ही रहे। उन लोगों को गांव वालों ने कोई तंग नहीं किया। दूसरे दिन चाईबासा से पुलिस बल टुनिया आया। फिर प्रमुख अनिरूद्ध प्रधान के घर गया। टकराव की आशंका से पुलिस सीधे गांव नहीं गयी। बाद में ग्रामीणों और वन विभाग के अधिकारियों के बीच समझौता हो गया। ग्रामीणों ने दोनों वनरक्षकों को छोड़ भी दिया। मामला भी दर्ज कर लिया गया था लगा था कि मामला शांत हो गया है।

एक सप्ताह के बाद पुलिस की नींद खुली। ट्रक पर सीआरपीएफ के जवान आये। जीप पर पुलिसकर्मी थे। पुलिस को देखते ही गांव वाले छिप गये। उन्हें यह बात समझने में देर नहीं लगी कि बदला लेने की नीयत से पुलिस आयी है। गांव के युवक जंगल की ओर भाग गये। सी.आर.पी.एफ. के हाथ कोई नहीं लगा। पुलिस बौखला कर रह गयी। किसे पकड़े किसे मारे, यह तय नहीं कर पा रही थी।

इसी बीच मछली पकड़नेवाले जाल के साथ दिऊं कोड़ा अपने घर जा रहे थे। उस समय उनकी उम्र करीब 70-75 साल की थी। उन्हें इस बात का जरा सा भी शक नहीं था कि पुलिस उन्हें भी पकड़ सकती है। जब दिऊं कोड़ा बुरूसांई स्थित अपने घर से करीब सौ कदम दूर थे तो सीआरपीएफ ने उन्हें पकड़ लिया। पुलिस गुस्से में तो थी ही ,उसने पहले कुसुम पेड़ को निशाना कर एक गोली दागी फिर दूसरी गोली दिऊं के जांघ में मारी। इसके बाद दिऊं को सीआरपीएफ ने पटक कर उनकी छाती में गोली मार दी। दिऊं वहीं शहीद हो गये। उनके दो लड़के गोधा कोड़ा और जयदर कोड़ा गांव में ही रहते हैं।

दिऊं कोड़ा को मारने के बाद सीआरपीएफ के जवान शव को गोइलकेरा ले गये फिर शव को बोरे में बंद कर पुटुस की झाड़ी में छिपा दिया। पुलिस के जाने के बाद जंगल से गांववाले बाहर निकले और शव को खोजने लगे। उन दिनों गांव के मुखिया थे वामाचरण कोड़ा। वे तत्कालीन विधायक देवेंद्र मांझी के घर चक्रधरपुर गये। देवेंद्र मांझी ने तुरंत चाईबासा में पुलिस के सीनियर अधिकारियों से बात की और कहा कि उनके आदमी का शव कहां गायब कर दिया गया है। वरीय पुलिस अधिकारियों ने देवेंद्र मांझी को लाश सौंप दी। शव को देवेंद्र मांझी ने बुरूसांई स्थित दिऊं कोड़ा के आवास पर ट्रक से लाये।

गांव वाले पुलिस से कितने आंतकित थे , इसका उदाहरण तब देखने को मिला जब शव लेकर आये ट्रक को देखते ही फिर गांव वाले भागने लगे। मुखिया ने कहा कि कोई नहीं भागेगा, वे स्वयं लाश लेकर आये हैं। फिर एक-एक कर ग्रामीण सामने आये उस समय रात के 11 बज रहे थे। दूसरे दिन पूरे गांव वालें ने सम्मान के साथ दिऊं कोड़ा का अंतिम संस्कार कर दिया और बिल्ला में उनकी अस्थी को गाड़कर वहां स्मारक बनाया। इसी स्मारक के पास हर साल 27 मार्च को मेला लगता है।

साभार – प्रभात खबर

(लेखक-अनुज कुमार सिन्हा)

❖❖

अध्याय 20

पूर्व सैनिक बीदर नाग को जीप से घसीट कर मार दिया था पुलिस ने

झारखंड आंदोलन के दौरान पूर्व सैनिकों को भी पुलिस ने नहीं छोड़ा था। उन तमाम पूर्व सैनिकों को निशाना बनाया गया जो विस्थापन- पुलिस जुल्म के विरोध मे या अलग राज्य के समर्थन में आंदोलन की अगुवाई कर रहे थे। इनमें गंगाराम कालुंडिया, बीदर नाग का नाम लिया जा सकता है। गुवा गोलीकांड (8 सितंबर, 1980) के ठीक तीन साल बाद गुवा फिर चर्चा में आया था। पुलिस ने गुवा के बीच बाजार में जीप के पीछे बांधकर पांच लोंगों को घसीटा था। इसके शिकार हुए थे बीदर नाग। सेना की नौकरी छोड़कर गांव लौटे थे और विस्थापितों की लड़ाई लड़ रहे थे। 1 जून, 1983 की घटना थी। उन्हें पुलिस ने पहले जीप से बांधकर घसीटा था और अधमरा होने के बाद हाजत में डाल दिया था। पुलिस हिरासत में बीदर नाग ने दम तोड़ दिया था। उन दिनों दीपक वर्मा उस क्षेत्र के डीएसपी थे। आरोप था कि उन्होंने बीदर नाग को जीप के पीछे बांधकर खींचा था। बाद में उन्हें इसी आरोप में निलंबित भी कर दिया गया था। गुवा माइंस में स्थानीय बेरोजगारों को रोजगार देने की मांग हो रही थी। माइंस से निकलने वाले लाल पानी से खेतों की उर्वरा शक्ति खत्म हो जाती है। जिन लोगों का खेत खराब हुआ था। उन्हें मुआवजा देने की मांग को लेकर आंदोलन होते रहता था।



बीदर नाग बिहार रेजीमेंट (नंबर 4247856) में थे। उन्होंने फौज की नौकरी बीच में ही छोड़ दी थी और इस्को में अस्थायी तौर पर मजदूर वर्ग में नौकरी शुरू की थी।

उन दिनों यह मुद्दा काफी गरम था। स्थानीय आदिवासियों का आरोप था कि मांइस में पैसा लेकर बाहरी लोगों की बहाली की जाती है, स्थानीय की उपेक्षा की जाती है। इसी

मुद्दे पर 30 मई, 1983 को आदिवासियों ने गुवा में इस्को प्रबंध के ख़िलाफ प्रदर्शन किया था। प्रबंधन ने आरोप लगाया था कि प्रदर्शन में शामिल कुछ युवकों ने काफी उत्पात मचाया था। प्रदर्शनकारियों की संख्या लगभग 100 थी। इस आंदोलन की अगुवाई बीदर नाग कर रहे थे। बीदर नाग बिहार रेजीमेंट (नंबर 4247856) में थे। उन्होंने फौज की नौकरी बीच में ही छोड़ दी थी और इस्को में अस्थायी तौर पर मजदूर वर्ग में नौकरी शुरू की थी। 28 दिसंबर 1982 को प्रबंधन ने उन्हें बहाली का पत्र जारी किया था। लेकिन बीदर नाग इस्को के खिलाफ आंदोलन जारी रखे हुए थे। उनके साथ आन्दोलन में नरसिंह किसान और नजीर खान थे।

बीदर नाग की दो पत्नियां थीं एक पत्नी शांति नाग ने बाद में सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती को जो पत्र भेजा था, उसमें इस बात का पूरा उल्लेख किया था कि कैसे पुलिस ने भरे बाजार में बीदर नाग को मार डाला था। लोग तमाशा देखते रहे। उन दिनों पुलिस बौखलायी हुई थी। आम आदमी डर के मारे कुछ नहीं बोल सकता था। 30 मई, 1983 सोमवार का दिन था सुबह छह बजे की डयूटी के लिए बीदर घर से निकले थे। पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया था।

पुलिस ने बीदर नाग के अलावा चार अन्य लोगों को 30 मई के प्रदर्शन के आरोप में पकड़ा था। ये थे, किशोर पांडेय, जोकिम भेंगरा, जीतू लोहार और श्याम तांती। इनमें सिर्फ बीदर नाग का नाम एफआइआर में था। इन सभी को गुवा थाना में बंद कर दिया गया था। जब बीदर नाग की पत्नी अपने पति से मिलने गयी तो उन्हें डरा-धमकाकर भगा दिया गया था।

थाना लाने के पहले बीच बाजार में पुलिस ने पांचों को जमकर पीटा था। पिटाई के बाद चौक बाजार पर पांचों का हाथ पीछे बांध दिया गया। फिर सभी को एक रस्सी में बांधा गया और पुलिस जीप में बांध कर लगभग आधा किलोमीटर घसीटा गया। गुवा की असहाय जनता पुलिस के इस जुल्म को देख रही थी लेकिन वह कुछ भी नहीं कर सकी। गुवा की जनता 1980 की घटना से वाकिफ थी जब 11 आदिवासियों को भून दिया गया था। पहले बीदर नाग को मार-मार कर अधमरा किया गया, बाद में किशोर पांडेय का पैर मार कर तोड़ दिया गया था। फिर सभी को थाना हाजत में बंद कर दिया गया था। रात मे थाना हाजत में ही बीदर नाग की मौत हो गयी थी।

बीदर की मौत के बाद काफी हंगामा हुआ। बिहार में कांग्रेस का शासन था। कांग्रेस ने ही आंदोलन चलाया। मानराय सिंह बोदरा, गंगाधर मुंडा ने क्रमशः चक्रधरपुर और बंदगांव प्रखंड कांग्रेस की ओर से पर्चा निकालकर पुलिस जुल्म का विरोध किया था। एसआरबी छब्बन काफी सक्रिय हुए। उन दिनों इंदिरा गांधी की जमशेदपुर में सभा होने वाली थी। उस सभा को छोड़कर छब्बन ने गुवा में अनशन किया। उनके आंदोलन में नरसिंह किसान भी शामिल थे। उन्होंने इस मामले को आगे बढ़ाया। इस आंदोलन ने असर

दिखाया और दोषी पुलिस अधिकारी निलंबित भी हुए। दरअसल पुलिस नरसिंह किसान को भी मारना चाहती थी। लेकिन वे हाथ नहीं लगे। पुलिस रामचंदर दास और धुचा टोप्पो को भी खोजती थी। पुलिस का आतंक इतना ज्यादा था कि कोई विरोध की हिम्मत नहीं कर सकता था। बाद में कानूनी लड़ाई बीदर नाग के दोस्त नजीर खान ने लड़ी। बीदर नाग की मौत के बाद उनका पूरा परिवार बिखर गया। उनकी दो पत्नी थी, बड़ी शांति नाग और छोटी बुधनी। बीदर की मौत के बाद उनकी दोनों पत्नी अपने अस्तित्व के लिए लड़ती रही। पहली पत्नी शांति नाग को इस्को में नौकरी मिली। कांग्रेस के नजीर खान ने कानूनी लड़ाई लड़ी तब जाकर उन्हें नौकरी मिली। बीदर नाग की दूसरी पत्नी बुधनी अभी जिंदा है। पहली पत्नी शांति नाग थी। जिनका वर्ष 1997 में निधन हो गया।

साभार – प्रभात खबर
(लेखक-अनुज कुमार सिन्हा)

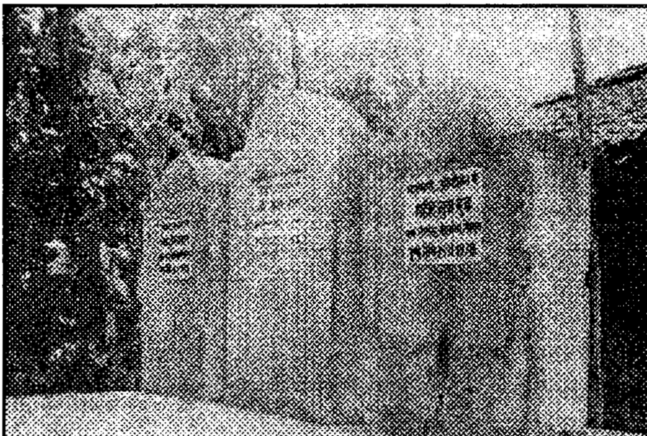
❖❖

अध्याय 21

सेरेंगदा गोलीकाण्ड-25 नवंबर, 1978

बच गये थे शैलेन्द्र महतो मारे गये थे तीन आदिवासी

जंगल आंदोलन के दौरान 25 नवम्बर, 1978 को पुलिस ने एक माह में दूसरी बार फायरिंग की थी। यह फायरिंग हुई थी गोइलकेरा के सेरेंगदा गांव में। तीन आदिवासी मारे गये थे। शैलेंद्र महतो बाल-बाल बच गये थे। अगर दो महिलाओं ने बहादुरी से उन्हें नहीं बचाया होता तो शायद उस दिन फायरिंग में शैलेंद्र भी मार दिये जाते। उन दिनों शैलेंद्र जंगल आंदोलन के अग्रणी नेता थे। देवेंद्र माझी, मोरा मुंडा, मछुवा गागराई, भुवनेश्वर महतो को तो पुलिस खोज ही रही थी। शैलेंद्र महतो के खिलाफ पुलिस ने इनाम घोषित कर रखा था। शैलेंद्र महतो उन दिनों गांव-गांव घूम कर जंगल आंदोलन के प्रति लोगों को जागरूक कर रहे थे। साथ ही शाल की जगह जहां-जहां सागवान का पेड़ लगाया जा रहा था, उसे उजाड़ने का अभियान चला रहे थे। सेरेंगदा में रेणु सिंह हाट से टैक्स वसूली करता था, इसका विरोध किया जा रहा था । इसी बीच पुलिस को सूचना मिली थी कि शैलेंद्र महतो (वही शैलेंद्र महतो, जो बाद में झारखंड मुक्ति मोरचा के महासचिव बने, सांसद बने) सेरेंगदा में छिपे हुए हैं।



पश्चिमी सिंहभूम के गोइलकेरा प्रखंड के सेरेंगदा में बना शहीद स्मारक

दरअसल शैलेंद्र थामस भुइयां के घर पर ही थे।

शनिवार का दिन था। अंचलाधिकारी सुलेमान सोरेंग,कार्यपालक दंडाधिकारी श्रीपति सिंह ,थाना प्रभारी रमाशंकर सिंह और पूरी टीम के साथ सेरेंगदा पहुंचे थे। ये लोग एक ट्रक (बी.आर.एस. 3640) पर सवार थे। शैलेंद्र को इसका आभास भी नहीं था कि उन्हें पकड़ने के लिए पुलिस सेरेंगदा तक भी आ सकती है। उनके खिलाफ गोइलकेरा थाना में मामला दर्ज था। साप्ताहिक हाट का दिन था। बाजार के दिन बोआस लोमगा नामक डाकुवा बागुन की मीटिंग का परचा बांट रहा था। इसी समय पुलिस आ गयी थी। पुलिस ने डाकुवा को पीटना शुरू कर दिया। इसका वहां मौजूदा लोगों ने विरोध किया। हंगामा हुआ। शैलेंद्र मिडिल स्कूल के पास सहयोगियों से बात कर रहे थे। वे भी आ गये। पुलिस उन्हें देखकर पहचान गयी और उन्हें दबोच लिया। यह सब इतनी तेजी से हुआ कि शैलेंद्र संभल भी नहीं सके। वे पुलिस के कब्जे में थे।

जैसे ही शैलेंद्र को लेकर पुलिस जाने लगी, हजारों लोगों ने पुलिस बल को घेर लिया। नारेबाजी करने लगी। भीड़ उन्हें छोड़ने की मांग कर रही थी। सीओ भीड़ को समझा ही रहे थे कि चौकीदार पर लोगों ने हमला कर दिया। लोगों को लगा था कि चौकीदार ने ही सूचना दी है। इस बीच सीओ के आदेश पर लाठीचार्ज कर दिया गया। भीड़ भड़क उठी, ड्राइवर को पकड़ने का भीड़ ने प्रयास किया। भयभीत होकर अंचलाधिकारी ने फायरिंग का आदेश दिया।

इसी बीच बड़ी तेजी से राहिल डांग और अजरमनी नामक दो महिलाएं पुलिस के सामने आ गयी । राइफल का मुंह ऊपर की ओर कर दिया। उसके पहले पुलिसकर्मियों ने राइफल को शैलेंद्र की कनपटी पर सटा रखा था। दोनों महिलाओं की इस कार्रवाई से पुलिस संभल नहीं सकी और इसका फायदा उठाकर शैलेंद्र भाग गये।

गुस्से में पुलिस फायरिंग करती रही। तीन लोग शहीद हो गये । लुपा बुढ़ और सोमनाथ लोमगा घटना स्थल पर ही मारे गये। दुबिया होनहागा ने बाद में दम तोड़ दिया। कई और लोगों को गोली लगी,फायरिंग के बाद जब पुलिसबल लौट रहा था,ग्रामीणों ने सड़क पर पेड़ काटकर उन्हें रोकने का प्रयास किया,लेकिन पुलिस निकलने में सफल रही। झारखंड आंदोलन के इन तीन शहीदों को हर साल याद किया जाता है। तीनों के स्मारक स्कूल के पास बने हुए हैं।

साभार – प्रभात खबर

(लेखक-अनुज कुमार सिन्हा)

❖❖

अध्याय 22

राधे सुम्बरूई

चक्रधरपुर से 6 किलोमीटर दक्षिण की ओर में सोमरा गांव बसा हुआ है। चारो ओर घने जंगलों से घिरा हुआ है। गांव के पूरब में लोटा पहाड़ स्थित है इसलिए सोमरा गांव की शोभा अपने आप में सुशोभित है।

राधे सुम्बरूई के माता का नाम स्व. शांति सुम्बरूई पिता का नाम स्व० सिनु सुम्बरूई था। राधे सुम्बरूई का एक भाई भी था। जिसका नाम चुन्नी सुम्बरूई था। इनका जन्म 22 अक्टूबर 1957 को सोमरा गांव में हुआ था। इसका परिवार एक साधारण किसान परिवार था।

इनका प्राथमिक शिक्षा हाकागुई में हुआ था। सोमरा गांव के पास के गांव में प्राथमिक स्कूल अवस्थित हैं। आगे की पढाई के लिए मनोहरपुर मध्य विद्यालय से पास किये। हाई स्कूल की पढाई एस.पी.जी मिशन बालक हाई स्कूल चाईबासा से मैट्रिक परीक्षा पास किया था। स्कूल समय से ही राधे अगुवाई करने की प्रवृत्ति से निहित था। पढाई में अच्छा था। किसी भी परिस्थिति में हार जल्द नहीं मानता था। मैट्रिक पास करने के बाद टाटा कालेज, चाईबासा में अपना दाखिला लिया। अगुवाई प्रवृति के होने के कारण वहाँ टाटा कालेज से छात्र नेता बनकर उभर गया।

1980-81 में इनको टाटा कॉलेज के छात्र संघ का महासचिव चुना गया था। स्नातक पढाई करने के बाद छात्र हित के लिए स्नातकोत्तर विभाग का स्थापना करवाया था। छात्र छात्राओं को अन्यत्र स्नातकोत्तर की पढाई के लिए जाना न पड़े।

1981-82 में यह झारखण्ड पार्टी में शामिल हो गये थे। पार्टी में रहकर झारखण्ड आंदोलन में बढ़चढ कर हिस्सा लिया। उस समय शिबू सोरेन केन्द्रीय नेता थे। राधे सुम्बरूई ने पार्टी को आगे बढाने के लिए काफी सक्रिय काम किया।

कुजू कैम विस्थापितों को मार्ग दर्शन करने लगे। हो लोगों के बीच उग्र क्रांतिकारी प्रवृत्ति के नेता के रूप में इनकी पहचान होने लगी। देवेन्द्र मांझी, मछुआ गागराई के आंदोलन को भी आगे बढाने का काम किया। आपसी मन मुटाव के बाद राधे सुम्बरूई भारतीय जनता पार्टी में शामिल हो गया। इस पार्टी ने इन्हें विधान सभा चुनाव के लिए टिकट

भी दिया गया।जनता का प्यार इन्हे मिला। प्रथम प्रयास में ही राधे सुम्बरूई चुनाव जीत गये। विधायक चुने जाने के बाद यह लोगों के बीच ज्यादा चर्चित होने लगे। विकास कार्य में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। आदिवासी समुदाय हो लोगों के लिए चाईबासा हरिगुटु में अपने विधायक फंड से 'हो समाज महासभा' भवन का निमार्ण करवाया।

अविभाजित बिहार में मध्यावधि चुनाव होने के कारण राधे इस चुनाव में हार गये। अपने अल्प कालीन समय में लोगों को सरकारी सुविधा दिलाने में पीछे नहीं हटे।

सन् 1984 में इनको पुनः भाजपा का जिला अध्यक्ष चुना गया था। वर्ष 1990 में इन्हें वनांचल का महामंत्री बनाया गया। महासचिव बनाये जाने के उपरांत इनकी जिम्मेदारी भी बढने लगी। विकास कार्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अपना मिशन चलाया था। 1988-89 में भारतीय मजदूर (संघ के) किरिबुरु, मेघाहातुबुंरु के मजदूर नेता चुने गये। मजदूर के हित को देखते हुए सही दर पर मजदूरी दिलाना इनका पहला कर्तव्य बना। इसके अलावे मजदूरों को हर परिस्थिति में साथ देता था। मजदूरों के बीच भी काफी प्रिय नेता बने।

इनको चर्चित होता देख समाज के अपराधी तत्व के लोगों की नींद हराम होने लगी। सन् 1993 में इनकी अपने आवास टुंगरी में अपराधियों ने गोली मार कर हत्या कर दिया। इनका शहीद दिवस प्रति वर्ष मनाया जाता है। इनके नाम से चाईबासा में एक शहीद चौक पर प्रतिमा स्थापित कर दिया गया। इनके नाम से चौक का नामकरण किया गया।

(लेखक-डॉ. दमयन्ती सिंकु)

❖❖

अध्याय 23

लरका हो विद्रोह

सिंहभूम में लरका कोल तथा हो जातियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया। वे कंटीली झाड़ियों में छिपकर अंग्रेजों पर हमला करते थे। 1817 से 1821 के बीच कोल और हो लगातार विद्रोह करते रहे। अंग्रेजों के साथ कई बार मुठभेड़ हुई। अन्त में हो जातियों ने आंशिक पराधीनता स्वीकार कर ली। वे इंच-इंच भूमि की रक्षा के लिए लड़ते रहे। महिलाओं ने भी विद्रोह में पूरा सहयोग किया। कोल विद्रोह सिंहभूम, मानभूम, रांची, हजारीबाग तक फैला। अंग्रेजों ने भयानक दमनकारी नीति अपनाई। किसान पशुओं को लेकर जंगलों में छिपने लगे ताकि अंग्रेज फौज के कहर से बच सकें। अंत में विद्रोहियों को शान्त करने के लिए दक्षिण पश्चिमी सीमान्त एजेन्सी नामक एक नई इकाई की स्थापना की गई।

कोल विद्रोह : 1831 में सम्पूर्ण झारखण्ड में कोल विद्रोह फैला। इसमें महिलाओं की भूमिका काफी सराहनीय थी। जिसमें बिन्दराय एवं सिन्दराय मानकी दोनों भाइयों के साथ उनकी दो बहनों ने विद्रोह में पूरा साथ दिया। बहनों ने महिलाओं का नेतृत्व किया। इनके अलावा तोपा मुंडा, सरयू मुंडा, दुन्दा मुंडा और कान्तो सरदार आदि प्रमुख नेता थे।

अंग्रेजों ने हड़िया पर रोक लगाकर शराब को बाजार में उतारा। वास्तव में भारतीय शोषक अंग्रेजों से मिलकर किसानों को लूटना चाहते थे और स्वयं अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करना चाहते थे। जिसके खिलाफ पूरा आदिवासी समाज-उरांव, चेरो, खेरवार, मुंडा, असुर, सदान उठ खड़ा हुआ। सोनपुर, पलामू, नगड़ी, पिठोरिया, डोयसा और कोराम्बे में विद्रोह फैल गया। पूंजीपति साहूकार, व्यापारी, जमींदार सभी विद्रोह के निशाने पर थे। अंग्रेजों ने विद्रोह दबाने के लिए तीन टुकड़ी सेना भेजी। सोदाम गुट्टु पहाड़ी पर विद्रोहियों और सेना के बीच भयंकर मुठभेड़ हुई। जिसमें अंग्रेजी फौज की हार हो गई। अंग्रेजों ने विद्रोहियों का दमन करने के लिए गैर आदिवासियों की सहायता ली। सिंगराय बहनों के साथ निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार किया गया। सिंगराय बहनों के साथ-साथ बदगांव के मुंडा मानकी (सरदार) की पत्नी का भी अपहरण किया गया। अंत में मुंडा लोगों ने आत्मसमर्पण किया। इस विद्रोह का दमन अंग्रेज कप्तान विलकिन्सन ने किया था।

(लेखक-डॉ. फ्रांसिस्का कुजूर)

❖❖

अध्याय 24

देवेंद्र माझी

सारंडा और कोल्हान का जंगल एशिया के घने जंगलों में से एक था। बल्कि इससे जुड़े कई सवाल हैं, जो एक साथ उपनिवेशवाद, पर्यावरण, औषधीय पौधा, खनिज सम्पदा के भंडार इत्यादि मुद्दों को एक कड़ी में जोड़ते हैं। एक ओर सारंडा की पहाड़ियां में लौह अयस्क का अकूत भंडार है, जिसका दोहन आज भी वहाँ के जनजीवन और परम्परा की उपेक्षा कर, टाटा कम्पनी कर रही है। कोल्हान का वन क्षेत्र अपार धन - सम्पदा के भंडार के कारण भारत की अर्थ व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग आज भी है।



इसलिए ब्रिटिश शासन काल का एक महत्वूपर्ण हिस्सा कोल्हान क्षेत्र भी था। धरती के अंदर छिपी धन-सम्पदा की रक्षा के लिए ब्रिटिश शासकों के खिलाफ 1920 -21 तथा 1931-33 तक का कोल विद्रोह इतिहास की गौरवमय गाथा है।

जंगल के क्षेत्र में 'जमीन बनाओ जमीन बनाओ खेती करो कृषि को जीविका हम बनाएंगे।' मनोहरपुर के बिहड़ में जन्में श्री देवेन्द्र माझी की जब आंखे खुली तो अपने-आप को घने जंगलो के बीच पाया। शोर-गुल से बिलकुल दूर वीरान जंगल में अपनी दिनचर्या व्यतीत कर रहे थे। अपनी शिक्षा समाप्त कर ये पूर्णतः जंगल आन्दोलन में जुड़ गये। सचमुच में श्री माझी जंगल आन्दोलन के नायक थे।

आजसू आन्दोलन के क्रम में मनोहरपुर और गोईलकेरा के जंगलों में जंगल आन्दोलन के लिए घूमते थे। जंगलो में रहने वाले आदिवासियों की आवाज सुन हक की लड़ाई में जुड़ते चले गये थे। आदिवासियों के रोजी -रोटी के सवाल से इनका आन्दोलन जुड़ा था। दिकू कहते थे देवेन्द्र माझी जंगल कटवा रहे हैं। जंगल का विनाश करवा रहे हैं। लेकिन दवेन्द्र माझी ने जंगल में रहने वाले भोले -भोले आदिवासियों को कंद-मूल खाकर जीने वाले सुदूर जंगल के आदिवासियों को कृषि कार्य के लिए प्रेरित किया करते थे।

एक दिन जिला मुख्यालय में आजसू का सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में अलग राज्य की मांग जोरदार शब्दों में रखी गयी थी। सम्मेलन में यह भी कहा गया कि जंगलों पर आदिवासियों को अधिकार देना होगा। आदिवासी जनजीवन और एक घनी वनजीव आश्रयस्थल भी है। वह पूंजीवाद, साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ आन्दोलन है, जिन्होने अपने लाभ के लिए खनिज पदार्थों का दोहन किया। जिन्होंने लाखों एकड़ भूमि में फैले कीमती पेड़ो को रातों-रात काटकर बेच डाला। इसके बाद पेड़ काटने का सारा दोषारोपण श्री देवेन्द्र माझी को दे दिया। इसके बाद देवेन्द्र माझी को भूमिगत होने के सिवाय और कोई चारा नहीं था। भूमिगत देवेन्द्र माझी को उस वक्त गिरफ्तार कर लिया गया जिस वक्त ये अपनी बीमार मां को देखने घर पहुँचे। जेल से छूटने के पश्चात् इनके समर्थकों ने गुवा के जंगलों का सर्वेक्षण करने आये वरिष्ठ पदाधिकारी के विरूद्ध प्रदर्शन भी किया। इस पर निहत्थे आदिवासियों पर पुलिस ने फायरिंग कर ग्यारह निर्दोषों को मौत के घाट उतार दिये। देवेन्द्र माझी पुनः गिरफ्तार किये गये।

वर्ष 1980 में देवेंद्र मांझी पहली बार चक्रधरपुर विधानसभा से विधायक चुने गये। झारखंड अलग राज्य की मांग को जारी रखा। वर्ष 1985 में पुनः श्री माझी मनोहरपुर विधानसभा क्षेत्र से विजयी हुए। अभी देवेंद्र मांझी सशरीर हमारे बीच मौजूद नहीं हैं, लेकिन उनका झारखंड अलग राज्य का सपना साकार हुआ है।

14 अक्टुबर, 1994 को अज्ञात हत्यारों द्वारा चक्रधरपुर अनुमंडल के गोईलकेरा प्रखण्ड के बीच बाजार में देवेन्द्र मांझी को गोली मार कर हत्या कर दी गयी थी। मगर हत्या के बाद भी उनके आदर्शों, सिद्धांतों एवं विचारों की गूंज पूरे कोल्हान के जंगलों एवं बीड़ी कारखानों में आज भी सुनाई देती है।

(साभार–झारखण्ड न्यूज लाईन, सांध्य)

❖❖

अध्याय 25

जंगल आंदोलन के नायक देवेंद्र माझी

जंगल क्षेत्र में जमीन बनाओ, जमीन बनाओ, खेती करो, कृषि को जिविका हम बनाएंगे।

ये बातें आज भी मेरे कानों में गूंजती है, जब-जब मैं देवेंद्र माझी के बारे में सोचता हूँ। आजसू आंदोलन के क्रम में मनोहरपुर और गोइलकेरा के जंगलों में कई बार उनसे मुलाकात हुई, तब वह सचमुच जंगल आंदोलन के नायक थे, जंगलों में रहने वाले आदिवासियों की आवाज थे। आदिवासियों के रोजी-रोटी के सवाल से उनका आंदोलन जुड़ा था। दिकू कहते थे-देवेंद्र माझी जंगल कटवा रहा है, जंगल का विनाश करवा रहा है, लेकिन देवेन्द्र माझी ने कंद-मूल खाकर जीने वाले सुदूर जंगल के आदिवासियों को कृषि की ओर प्रेरित किया और आज यदि मनोहरपुर, गोईलकेरा तथा सुदूर जंगल इलाके में यदि वहां के हो, मुंडा आदिवासी कृषि के जरिए अपनी रोजी-रोटी प्राप्त कर रहे हैं तो यह देवेंद्र माझी की देन है। अंतिम बार चाईबासा के पिल्लई हॉल में आजसू द्वारा आयोजित सम्मेलन के क्रम में उनसे मुलाकात हुई। मैंने उनसे हाथ मिलाया था। मुझे उनकी सारी बातें याद है। उन्होंने अलग राज्य की मांग जोरदार शब्दों में रखी थी। उन्होंने अपने भाषण में कहा था--जंगलों पर आदिवासियों को अधिकार देना पड़ेगा और जंगल के अंदर निवास करने वाले खेतिहर किसानों को जमीन का मालिकाना



हक सरकार को देना पड़ेगा। तभी मुझे मालूम हुआ था कि कोल्हान वन क्षेत्र के अंतर्गत जिसमें मनोहरपुर, चक्रधरपुर के कुछ हिस्से गोइलकेरा चिड़िया, गुवा, जामदा, नोवामूडी, जगन्नाथपूर इत्यादि क्षेत्र आते हैं जिसके अंदर लाखों एकड़ जमीनों में वहां के आदिवासी वर्षों से कृषि का कार्य करते हैं। कृषि के अलावा जंगल के उत्पाद ही उनकी जीविका के मुख्य साधन हैं, देवेंद्र माझी ने उन आदिवासियों को जंगल के भीतर बसे खेती की जमीनों से जुड़े आदिवासियों को जमीन का मालिकाना हक दिलाने की बात उठाई। कई बार इसके लिए आंदोलन हुए। प्रशासन को, सरकार को लिखित ज्ञापन के माध्यम से इसकी मांग की गयी। इस संबंध में वन विभाग से रिपोर्ट भी मांगी गयी। परंतु इस दिशा में किसी भी सरकार ने गंभीरता से आज तक नहीं सोचा।

जंगल आंदोलनों की श्रृंखला में कोल्हान का जंगल आंदोलन एक ऐतिहासिक परिघटना है और जब-जब जंगल आंदोलन की बात होगी, तब-तब देवेंद्र माझी का नाम इतिहास के पन्नों का गौरव बनेगा।

जंगल आंदोलन का तात्पर्य और उसकी महत्ता

जंगल का सवाल और उसके साथ जुड़े जनसमुदाय का सवाल आज से 20वर्ष पूर्व भी महत्वपूर्ण था और आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है। यह महत्ता सिर्फ इसलिए नहीं कि सारंडा और कोल्हान के जंगल एशिया के घने जंगलों में एक था, बल्कि इससे जुड़े कई सवाल हैं जो एक साथ उपनिवेशवाद, पर्यावरण, खनिज संपदा, आदिवासी जनजीवन, कीमती पेड़ पौधे, औषधीय पौधों के भंडार इत्यादि मुद्दो को एक कड़ी में जोड़ते हैं। एक ओर सारंडा की पहाड़ियों में लौह अयस्क का अकूत भंडार छिपा है जिसका दोहन आज भी वहां के जनजीवन और परंपरा की उपेक्षा कर टाटा कंपनी कर रही है। गुवा में लौह अयस्क के खदान और गुवा गोली कांड ये दोनों जुड़े हुए पहलू हैं। साल, सागवान, शीशम इत्यादि कीमती पौधों का अपार संग्रह किसी भी पूंजीवादी व्यवस्था को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। सात सौ छोटी-बड़ी पहाड़ियों से अच्छादित सारंडा अभ्यारण्य और कोल्हान का वन क्षेत्र अपार धन संपदा का भंडार लिए भारत की अर्थ व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग आज भी है। इसलिए ब्रिटिश शासनकाल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा कोल्हान क्षेत्र भी था। अपनी धरती के अंदर छिपी धन संपदा की रक्षा के लिए ब्रिटिश शासकों के खिलाफ 1820-21 तथा 1831 -33 तक का कोल विद्रोह इतिहास की गौरवमय गाथा है, इसी विद्रोह ने पूरे पश्चिम सिंहभूम (वर्तमान) को विल्किनसन रूल्स के कानूनी प्रावधानों से जोड़े रखा। छोटानागपुर तथा संथाल परगना टेनेंसी एक्ट की तरह चाईबासा (कोल्हान क्षेत्र के) आदिवासी जनसमुदाय की पारंपरिक- सामाजिक व्यवस्था, मानकी मुंडा व्यवस्था की सुरक्षा और कानूनी अधिकार के प्रावधान किये गए। जमीन के हस्तांतरण पर कानूनी रोक लगाए गए परंतु आजादी के बाद क्या हुआ। आजाद भारत सरकार ने विल्किनसन रूल्स के ऊपर नयी प्रजातांत्रिक संरचना, पुलिस-कचहरी और पंचायत की सामानान्तर व्यवस्था लागू कर

दिये। विलिकिंसन रूल्स की उपेक्षा कर आदिवासियों के आत्मनिर्णय का अधिकार छीन लिया गया। उनकी सामाजिक सांस्कृतिक, पारंपरिक समाज व्यवस्था की उपेक्षा करते हुए उससे समाज के मामलों पर कानूनी अधिकर छीन लिये गये। उन्हें जंगल से बेदखल करने की कोशिश की गयी। मनोहरपुर से लेकर चिड़िया और गुवा से किरीबुरू तक आदिवासियों की उपेक्षा कर लौह अयस्कों के दोहन की शुरूआत की गयी। रेल लाइनों का मकसद जनसंचार की मंशा से नहीं, खनिजों के दोहन की मंशा से की गयी। इस प्रकार पश्चिम सिंहभूम उपनिवेशवादी ताकतों से घिरा रहा। करोड़ों रूपये के संसाधनों का केंद्र और इसके शासकों ने यह कभी सोचने की जरूरत नहीं समझी कि इन जंगलों के बीच आदिवासी जनजीवन और एक घनी वनजीव आश्रायणी भी है। यह उपेक्षा वहां के विकास कार्यों और वहां की गरीबी से प्रमाणित होती है। आज भी आदिवासी जंगली जीवों की तरह जीवन गुजारने को विवश हैं, इतना अन्याय और अत्याचार कोई भी भूमि पुत्र बर्दाशत नहीं कर सकता। जिसकी धरती पर पूंजीपतियों द्वारा नंगा नाच हो रहा हो वह धरती भला अशांत कैसे न होगी। इन्हीं परिस्थितियों ने वहां जंगल आंदोलन को जीवित किया। जंगल आंदोलन, मतलब वहां के आदिवासियों के अस्तित्व का आंदोलन। आदिवासियों की आवाज थी, कि हमें खेती का अधिकार चाहिए, हमें जंगल का अधिकार चाहिए क्या यह नाजायज है? किसी भी सूरत से यह नाजायज नहीं कही जा सकती है। यह आंदोलन पूंजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन है। जिन्होंने अपने लाभ के लिए खनिज पदार्थों का दोहन किया, जिन्होंने लाखों एकड़ भूमि में फैले कीमती पेड़ों को रातों-रात काटकर बेच डाला। इस परिस्थिति में यदि देवेंद्र माझी ने खेत बनाओं खेती करो पर्चा हम दिलवाएंगे की घोषणा कर आदिवासी अस्तित्व रक्षा के लिए आंदोलन की बुनियाद रख दी है, जो वहां रह रहे जाति समुदायों का सार्वभौम अधिकार है। ऐसी सोच और इसके लिए एक ताकत बनाना निश्चय ही एक ऐतिहासिक कदम है। विशेष कर तब जब पूंजीवादी ताकतें अपनी पूंजी विस्तार की प्रक्रिया अपनी पूरी ताकत के साथ चला रही थी। शायद आज वहां के आदिवासी अस्तित्व विहीन होते यदि जंगल और जमीन पर अपने मालिकाना हक के दावे नहीं किए जाते। आज संपूर्ण झारखंड अपने अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत है। इस अस्तित्व रक्षा के संघर्ष के इतिहास में दवेंद्र माझी का नाम निश्चित तौर पर गौरवपूर्ण गाथा के रूप में लिखा जा सकेगा।

जल-जंगल और जमीन के दावे आज भी जीवित हैं

वर्तमान संदर्भ में यदि जंगल आंदोलन और देवंद्र माझी सरीखे शख्शीयतों की चर्चा करें तो 20 वर्ष पूर्व डाले गए अस्तित्व रक्षा के लिए जंगल आंदोलनों की जीवंतता आज भी बरकरार ही नहीं है बल्कि आज के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता अधिक बढ़ गयी है। इतना ही नहीं देवेंद्र माझी जैसे नेतृत्व की भी प्रासंगिकता बढ़ा गयी है, क्योंकि आज के समय का हर नेता सिर्फ सत्ता की कुर्सी से अपना नाता जोड़ने की कोशिश में मशगूल है। आज के नेताओं के एजेंडे से जल, जंगल और जमीन से जुड़े कोई स्थान नहीं रखते। उनके लिए

उनकी सुविधाएं प्रमुख हैं न कि आदिवासियों और पिछड़े जन समुदाय की गरीबी और अशिक्षा के मुद्दे। विधानसभा में सुदूर कोल्हान सिमडेगा, गुमला, मनोहरपुर और अन्य जंगली इलाकों के लोगों की समस्याएं अब नहीं उठती। विधानसभा के मामलों में तो ये मुद्दे अब इतिहास की बातें हो गई है जिसका संबंध देवेंद्र माझी जैसे लोगों से जुड़ा है। परंतु यह परिस्थिति अत्यंत खतरनाक है। आज योजनाबद्ध तरीके से उपनिवेशवाद की ताकतें भूमंडलकीरण और मुक्त बाजार नीति के नाम पर खुले आम भारत में प्रवेश कर रही हैं। और यह भी सर्वविदित है कि ऐसे शक्तिशाली ताकतों के प्रवेश के पहली प्राथमिकता झारखंड प्रदेश ही होगा। सवाल है क्या हम उन ताकतों से लड़ पाएंगे? अथवा इन महाशक्तियों के बीच हम अपना अस्तित्व सुरक्षित रख पाएंगे? शायद हम अब तक इसके लिए तैयार नहीं है। झारखंड के नेता शायद यह भूल बैठे हैं कि पूंजीवादी ताकतों के खिलाफ उनकी प्राथमिकता क्या है? झारखंड के जंगलों में संघर्षरत हर आम आदमी अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रति चिंतित है। आज के संदर्भ में यह प्रासंगिक होगा कि हम उन बुनियादी सवालों पर अपना घ्यान केंद्रित करें जिसका प्रश्न देवेंद्र माझी ने उठाया। हमें उन आदिवासियों के अस्तित्व को जमीन से जोड़ना ही होगा जिनकी रोजी-रोटी जमीन से जुड़ी है परंतु उस पर उनका मालिकाना हक नहीं है। वरना नयी भूमि अधिग्रहण नीति का यह खतरनाक संकेत है कि कभी भी हमारी जमीनें, हमारी खेती और हमारा अस्तित्व पूंजीवादी ताकतों के हाथों गिरवी हो सकता है। हमें भूमंडलीकरण की तमाम नीतियों, मसलन भूमि अधिग्रहण नीति, पुनर्वास नीति, नई वन नीतियों के आलोक में अपना अस्तित्व तलाशना होगा अन्यथा हमारे अस्तित्व का अंत निश्चित है। हमारे अंदर जल, जंगल और जमीन के प्रति अपने जज्बात पैदा करने होंगे। अपनी भावना का अपने जमीन के प्रति तैयार किये बिना उसके लिए संघर्ष चेतना पैदा नहीं हो सकती।

इसीलिए में यह कहना चाहूंगा कि देवेंद्र माझी के जीवन चरित्र में एक भावना थी। जंगल जमीन की रक्षा का जज्बा था इसीलिए उनके अंदर एक आंदोलनकारी की मनोभावना था, जो आज मुश्किल से उत्पन्न होती है। यही बातें देवेंद्र मांझी के लिए विस्मरणीय बातें हैं और जंगल जमीन के दावे की उनकी बुनियाद भूले नहीं जा सकेंगे, क्योंकि यह जीवन के अस्तित्व की बात है। इसे पुर्नजीवित करने की जरूरत है। यही सम्मान होगा वीर पुरूषों और आंदोलनकारी शहीदों के प्रति झारखंडी जनता का। हमें उनके सम्मान की मानसिकता भी बनानी होगी। इन्हीं क्रांतिकारी आह्वान के साथ।

जय झारखंड! जोहार!

झारखंड के शहीद अमर रहें!

साभार – झारखण्ड न्यूज लाइन, सांध्य दैनिक, 13 अक्टूबर

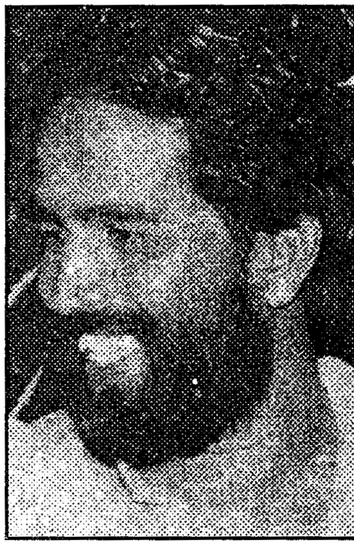
(लेखक-प्रभाकर तिर्की)

❖❖

अध्याय 26

शहीद निर्मल महतो

निर्मल महतो एक साधारण परिवार में जन्में शिशु का नाम नहीं बल्कि एक क्रांति के जन्म का नाम था। इनका जन्म 25दिसम्बर को हुआ था। गरीबी को इन्होंने बहुत ही करीब से देखा है। इनके पास जन्मजात सर्वसम्पन्न नेतृत्व गुण थे। बचपन से ही इनमें नेतृत्व करने की अद्भुत क्षमता रही।



आजादी के बाद भारत वर्ष में कई पार्टियाँ बनी। केन्द्रीय स्तर से राज्य स्तरीय एवं जिला स्तरीय कई पार्टियाँ बनती एवं टूटती रहीं है। राजनीतिक पार्टियों का गठन करने में झारखंड राज्य भी पीछे नहीं है। झारखंड को अलग राज्य बनाने के लिए कई छोटी बड़ी पार्टियों का गठन किया गया था। इसमें झारखंड पीपुल्स पार्टी एवं आजसू (ऑल झारखंड स्टुडेन्ट यूनियन) इत्यादि। इस पार्टी के अन्दर कई वीर जन्मे और कई अस्त हो गये। सभी पार्टियों की मांग झारखंड अलग राज्य का रहा। अन्ततः 15 नवम्बर, 2000 को बिरसा मुण्डा जयंती के सुअवसर पर झारखंड अलग राज्य के गठन की घोषणा कर दी गयी। झारखंडवासियों के लिए यह अनमोल तोहफा है।

25 दिसम्बर की सर्द रात को एक तरफ शहीद निर्मल महतो की मां प्रसव पीड़ा से कराह रही थी। दूसरी तरफ ईसाई समुदाय के लोग ईसा मसीह के जन्म दिवस को काफी उत्साह पूर्वक मना रहे थे। इसी रात महतो परिवार के घर एक बालक जन्म लेता है। यह बालक कोई साधारण बालक नहीं बल्कि एक क्रांति का जन्म हुआ था। यद्यपि निर्मल महतो का लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा लौह नगरी जमशेदपुर शहर में हुआ था। परन्तु परिस्थितिवश उन्हें अधिकतर समय गांव, देहात के गलियों में गुजारना पड़ा। गांव की दयनीय स्थिति देख गांव की विकास के लिए निरंतर आगे रहते थे।

कॉलेज की शिक्षा पूरी कर लेने के बाद इनके माता-पिता चाहते थे कि निर्मल भी नौकरी कर अपने बूढ़े मां-बाप का सहारा बने एवं घर-परिवार का खर्च चलाने में अपनी भागीदारी निभाये। घर वाले एवं रिश्तेदार के सहयोग से नौकरी की तलाश में जुट गये,लेकिन नौकरी मिलना इतना आसान नहीं था। खुदा को कुछ और ही मंजूर था। लौह नगरी की निजी कारखानों में अपना किस्मत आजमाना चाहा किन्तु निराशा ही हाथ लगी।

निर्मल महतो गांव -गांव घूमने लगे। गांव को इतना करीब से देखने -समझने का अवसर इन्हें मिला। इस दौरान इन्हें आभास होने लगा कि गांव वाले गरीब, अशिक्षित एवं बेघर हैं। सरकार की तमाम योजनाओं से वंचित हैं। डरे हुए हैं, सहमे हुए हैं। निर्मल महतो की झारखंड की लड़ाई सिर्फ आदिवासी की नहीं वरन् समस्त झारखंड वासियों की लड़ाई थी। गरीब आदिवासी और गैर आदिवासी में कोई अन्तर नहीं माना। उन्होंने यह माना कि झारखंड की लड़ाई सबके लिए है। झारखंड मुक्ति मोर्चा से आकर्षित हो इस पार्टी में निर्मल महतो शामिल हुए।

वर्ष 1980 को शिबु सोरेन के संपर्क में आये। शुरू से ही श्री महतो, शिबु सोरेन की सादगी एवं इनके जीवन शैली से काफी प्रभावित रहे हैं। पहले यह झारखंड पार्टी के लिए काम करते रहे और इसी पार्टी से जुड़े रहे। वर्ष 1982 को श्री महतो झारखंड मुक्ति मोर्चा के बड़े नेता के रूप में उभरे ।

सिंहभूम जिला के तिरिलडीँह गोली कांड को लेकर सिंहभूम जिला से प्रभावित थे। उस समय झामुमो के अध्यक्ष श्री विनोद बिहारी महतो हुआ करते थे और शिबू सोरेन महामंत्री। वर्ष 1984 में झामुमों में विभाजन की नौबत आ गयी। विभाजित झामुमो में निर्मल महतो की सूझ-बूझ वाली नेतृत्व को देख इन्हें झामुमों के प्रथम महाधिवेशन में सर्वसम्मति से केन्द्रीय अध्यक्ष चुने गये। शिबू सोरेन महामंत्री बनाये गये। इसके बाद निर्मल महतो ने आजसू द्वारा ऐसा धमाका किया कि इसकी गूंज दिल्ली तक पहुंच गयी। इस गूंज से केंद्र सरकार हिल गयी थी। निर्मल महतो का बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर इनके दुश्मन भी सतर्क हो गये।

झामुमों के प्रथम अधिवेशन में सर्वसम्मति से केंद्रीय अध्यक्ष चुने गये। यहीं से निर्मल महतो की सफलता शुरू हुई। शोषक घबरा उठे। वर्ष 1989 में आजसू की ताकत को देखा। झामुमों की मजबूती और शक्ति को भी देखा। झामुमो का गठन शिबू सोरेन, बिनोद बिहारी महतो और एस. के. राय जैसे प्रमुख नेताओं ने किया था। निर्मल महतो ने इसे आगे बढाया। एक बार की बात थी। निर्मल महतो चाईबासा गये थे। चाईबासा में पहुँचकर निर्मल महतो को पता चला कि श्री राय चाईबासा आये हुए है। वे उनसे मिलने चले गये। निर्मल महतो जितना श्री राय से बातचीत किये सिर्फ आन्दोलन की ही बात हुई। क्या करना है। श्री राय से सिर्फ सलाह लेते रहे। श्री राय के अनुसार निर्मल महतो में सीखने की शक्ति देखने को नहीं मिलती है। ऐसा गुण औरों में देखने को नहीं मिलता जो निर्मल महतो में देखने को मिलता था।

निर्मल महतो के नाम से भ्रष्ट अधिकारी, शोषक वर्ग कांपते थे। सूदखोरों के खिलाफ तो इन्होंने आंदोलन तक किये। एक बार इन्होंने हॉकी स्टिक से पिटाई तक की थी। सिक्के के एक पहलू ये थी। सिक्के का दूसरा पहलू गरीबों की सेवा करना। गरीबों की मदद करना। वर्ष 1982 में चांडिल में जब फायरिंग हुई थी, कॉलेज के दो छात्र अजय महतो और धनंजय महतो शहीद हो गये थे। पुलिस का इतना आतंक था कि कोई शव लेने तक नहीं आया।जब निर्मल महतो को पता चला तो खुद ही गाड़ी का इन्तजाम करके टाटा एम.जी.एम. हास्पीटल ले गये। पोस्टमार्टम के बाद शव लेकर आये। अन्तिम संस्कार भी करवाये, अगर निर्मल महतो नहीं होते तो दोनों शहीद छात्रों के शव का लोग अन्तिम दर्शन तक भी नहीं कर पाते।

जिस समय श्री शिबू सोरेन और निर्मल महतो झारखंड आंदोलन की अगुवाई कर रहे थे उस समय झारखंड में लोग दो तरह से बँटे हुए थे। झारखंडी और गैर झारखंडी आदिवासी हो या गैर आदिवासी पुलिसिया जुल्म से सभी ग्रसित थे। पुलिस की गोली का शिकार कोई भी होता था। निर्मल महतो आदिवासी, गैर आदिवासी में कोई फर्क नहीं करते थे। उस समय शिबू सोरेन अध्यक्ष पद पर विराजमान थे। शिबू सोरेन निर्मल महतो को बहुत मानते थे। उन्हें अपना दाहिना हाथ मानते थे। निर्मल महतो के लिए शिबू सोरेन सब कुछ थे।

एक बार की बात थी जब एम.एल.ए. का एक सीट खाली हुआ था। शिबू सोरेन इस सीट के लिए निर्मल महतो को उम्मीदवार बनाना चाहते थे। कुछ लोग दबी जुबान से इसका विरोध भी कर रहे थे। गुरूजी खुद नामांकन फार्म भरकर निर्मल महतो के पास हस्ताक्षर करने के लिए भेज दिये। निर्मल महतो इस पद पर किसी आदिवासी उम्मीदवार को चुनाव लड़ाने के पक्ष में थे। इससे ऐसा लगता था कि गुरूजी के प्रिय होने के साथ-साथ निर्मल महतो कभी आदिवासी एवं गैर आदिवासी में फर्क नहीं करते थे।

निर्मल महतो को 36 वर्ष के आयु में अध्यक्ष बनाया गया था। निर्मल महतो अपने आप में एक संगठन थे। झारखण्डियों को शोषण से मुक्ति दिलाने में प्रयासरत थे। इस बात से काफी चिन्तित रहते थे कि गांव एवं जंगल में रहने वालों को हक दिलाया जाए। किस तरह जल, जंगल और जमीन में मूलवासी आदिवासियों को कब्जा दिलाया जाये। उस वर्ष निर्मल महतो ने झारखंड को बहुत कुछ दिया।

वर्ष 1974-75 से ही झारखंड की राजनीति में इनका जुड़ाव हो गया था। वर्ष 1980 की गुवा गोली के कांड के बाद झामुमो से जुड़े । अपनी कुशल नेतृत्व क्षमता और जुझारुपन के बल पर पार्टी में शामिल होने के सिर्फ चार साल में ही इन्होंने अध्यक्ष पद हासिल किया था।

निर्मल महतो महसूस करते थे कि गरीबी को दूर करना है तो सबों को शिक्षित होना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने शिक्षा पर अधिक जोर दिया। शिक्षा बिना उत्थान नहीं होगा । शिक्षा होगी तो विकास होगा। वे शिक्षा की बुनियादी सुविधा की व्यवस्था करते थे। शिक्षक अगर स्कूल नहीं आते तो उन पर दबाव बनाते थे। इन्होंने एक बार एक हेडमास्टर की पिटाई

तक की थी। निर्मल महतो के नाम पर कई स्कूल कॉलेज खोला गया। कुकुड़ में शहीद निर्मल महतो हाईस्कूल, ईचागढ़, शहीद निर्मल महतो हाई स्कूल, घोडाबंधा, जमशेदपुर शहीद निर्मल महतो इंटर कालेज एवं डुमडुमी नीमडीह में भी स्कूल चल रहे हैं।

निर्मल महतो की हत्या 8 अगस्त, 1987 को हुई। कई बार ऐसा वक्त आया था जब श्री महतो मौत के मुंह से बच निकले थे। निर्मल महतो पर जानलेवा हमला किया गया था। विरोधियों ने अकेला पाकर हमला कर दिया था। हमलावर मृत समझ कर छोड़ गये। हमला का निशाना पूरे शरीर में बने हुए थे। चोट काफी गहरे थे। इस चोट के बारे में श्री शिबू सोरेन और अन्य सहयोगी को जानकारी नहीं थी। इसका खुलासा जामताड़ा के एक बैठक में हुआ था। जाड़े का मौसम था श्री शिबू सोरेन और निर्मल महतो दोनों साथ में स्नान करने नदी गये थे। दोनो सरसों तेल लगा कर धूप में बैठे हुए थे। दोनों ही खाली बदन थे। श्री सोरेन ने देखा कि निर्मल महतो के पूरे शरीर में चमड़ा छिला हुआ का दाग दिखाई पड़ रहा था। श्री सोरेन ने पूछा कि तुम्हारे शरीर में कैसा दाग। श्री निर्मल महतो ने अपने साथ घटित जानलेवा हमला की घटना बतायी।

सबसे दुख की बात है कि निर्मल महतो ने तमाम गरीब दबे-कुचले लोगों के उत्थान के लिए जो सपना देखा था, वो सपना बन कर रह गया। लोग बंटते चले जा रहे हैं, लोग बिखरते चले जा रहे हैं। निर्मल महतो के नाम पर राजनीति हो रहा है। झारखंड आंदोलन के दौरान हजारों आंदोलनकारियों पर मुक्कदमें हुए । निर्मल महतो सहित कई छात्र नेता आन्दोलन में शहीद हो गये, अपनी कुर्बानी देनी पड़ी। आजसू के संस्थापक शहीद निर्मल महतो का सपना आज कई टुकडे में बंटकर रह गया। आज शहीद निर्मल महतो का सपना, सपना बन कर रह गया।

(साभार – डहर पत्रिका)

❖❖

अध्याय 27

झारखण्ड को कमी खलती है 'निर्मल महतो' की

झारखण्ड आंदोलन के दौरान राज्य में सबसे बड़ा भूचाल 8 अगस्त, 1987 को आया था। उसी दिन झारखण्ड मुक्ति मोरचा के तत्कालीन अध्यक्ष निर्मल महतो की हत्या जमशेदपुर के चमरिया गेस्ट हाउस में उस समय कर दी गयी थी, जब वे सीढ़ी से उतर रहे थे। उनकी हत्या अभी तक झारखण्ड में सबसे बड़ी राजनीतिक हत्या है। अगर निर्मल दॉ अपने मित्रों ,शुभचिंतकों या फिर शिबू सोरेन (गुरूजी) की बातों पर गंभीरता से ध्यान दिये होते और चौकस हो गये होते तो शायद उनकी जान नहीं जाती। पहले भी तीन चार बार निर्मल महतो पर हमला का प्रयास किया गया लेकिन उनके साथियों ने इसे विफल कर दिया। सिर्फ एक घटना में 1974 -75 में अपराधियों ने उन पर हमला किया था और अधमरा छोड़ दिया था। हत्या के एक दिन पहले भी उनकी हत्या का प्रयास किया गया था। रांची से चांडिल के बीच उनकी गाड़ी का पीछा किया गया था लेकिन चांडिल के बाद नहीं, फदलूगोड़ा में रात में उन लोगों ने खाना खाया और देर रात टिस्को गेस्ट हाउस आये। दूसरे दिन अवतार सिंह तारी की मां का श्राद्ध था। इसी में भाग लेने के लिए ज्ञानरंजन और सूरज मंडल भी आये हुए थे। यह तय हुआ कि निर्मल दा रात में अपने घर नहीं जायेंगे और रात में बातचीत होगी। उस दिन गेस्ट हाउस के दो नंबर कमरे में तीनों ने रात में दो बजे तक चर्चा की।

दूसरे दिन यानि आठ अगस्त को निर्मल दा के बड़े भाई के साले कालीचरण लगभग नया 407वाहन ले कर लाये थे। निर्मल दा ने कहा था कि इसे झारखण्ड रथ बनायेंगे और इसे पूरे झारखण्ड मे घुमाया जायेगा। झारखण्ड रथ का उनका सपना अधूरा रह गया। इस नये 407 वाहन को सूरजमंडल ने भी एक राउंड घुमाया। इसी बीच निर्मल दा का ड्राइवर बीजू जीप लेकर आ गया। इसी बीच जब निर्मल दा गेस्ट हाउस से उतर रहे थे, अपराधियों ने उन पर करीब से गोलियां दागी और वे शहीद हो गये।

कहा तो यह भी जाता है कि अगर निर्मल महतो शहीद नहीं हुए होते तो शायद झारखण्ड नहीं बना होता। उनकी शहादत के बाद आजसू और झारखंड मुक्ति मोरचा ने जो ताकत दिखायी थी,उससे आंदोलन को बल मिला था। निर्मल महतो की हत्या की खबर उन दिनों दूरदर्शन (उन दिनों और चैनल नहीं हुआ करते थे) पर प्रसारित की गयी, पहली बार सरकारी मिडिया में झारखण्ड मुक्ति मोरचा का नाम आया था। निर्मल महतो की हत्या के

बाद झारखंड में बंदी का दौर चला, प्रतिहिंसा हुई, लोग सड़कों पर उतरे, आजसू के गठन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही थी नतीजन आजसू ने राज्य भर में आंदोलन छेड़ दिया था।

निर्मल महतो एक बहादुर, दूरदर्शी और तेज दिमाग वाले नेता थे। जहां बात से काम नहीं होता था, वहां ताकत का उपयोग करने से भी नहीं हिचकते थे। उनकी ताकत को शिबू सोरेन ने पहचाना था। गुरूजी ने नेमरा, गोला, पीरटांड और टुडी से शोषण के खिलाफ जो आंदोलन छेड़ा था, उसी के आधार पर सिंहभूम में निर्मल महतो ने आंदोलन चलाया था, जहां शोषण की बात हो, तो वे पहुंच जाते। गुरूजी ने बहुत सोच समझकर निर्मल महतो को झामुमो से जोड़ा, इसका लाभ भी पार्टी को मिला, वह सिर्फ महतो के नेता नहीं थे। उन दिनों आज की तरह महतो और आदिवासी में दूरी नहीं थी। आदिवासी और मूलवासी दोनों ने मिलकर झारखंड की लड़ाई लड़ी ।

हालांकि शिबू सोरेन और निर्मल महतो का साथ सिर्फ सात साल का रहा लेकिन सात सालों के भीतर शिबू सोरेन और निर्मल महतो ने झारखंड आंदोलन को मुकाम तक पहुंचा दिया था। निर्मल महतो एक व्यक्ति नहीं थे, अपने आप में एक संगठन थे, जाति और धर्म से ऊपर हमेशा सोचा करते थे कि शोषण से मुक्ति कब और कैसे मिलेगी, कब मिलेगा अलग झारखंड राज्य। वे सवाल करते थे कि कैसे झारखंड से गरीबी को दूर किया जाये, कैसे जल, जंगल और जमीन पर यहां के आदिवासियों और मूलवासियों को कब्जा दिलाया जाये। मात्र 37साल का उनका जीवन था लेकिन इसी 37 साल में उन्होंने जो कर दिया, उसे आज भी याद किया जाता है।

निर्मल महतो 1947-75 से ही झारखंड की राजनीति से जुड़ गये थे लेकिन 1980 में वे झारखंड मुक्ति मोरचा से जुड़े। निर्मल महतो ने अपने नेतृत्व क्षमता और जुझारूपन के बल पर मात्र चार साल में (1984 में) झामुमों के अध्यक्ष का पद हासिल कर लिया था। यह कोई सामान्य बात नहीं थी । यह इस बात का सबूत है कि निर्मल महतो कितने जुझारू नेता थे। शहीद होने के समय वे झारखंड मुक्ति मोरचा के सर्वोच्च पद पर यानि अध्यक्ष थे। कोई सोच नहीं सकता था कि इतनी कम अवधि में वह व्यक्ति इस पर पहुँच सकता है। उन पर शिबू सोरेन यानी गुरूजी की शुरू से कृपा रही थी। निर्मल महतो को गुरूजी अपना अभिन्न अंग मानते थे।

निर्मल महतो चाहते थे कि झारखंड का हर व्यक्ति शिक्षित हो। वे जानते थे कि जब तक झारखंडी शिक्षित नहीं होंगे, उनका विकास नहीं होगा। वे कहते थे कि जब तक झारखंड के आदिवासी-मूलवासी पढ़ेंगे लिखेंगे नहीं, नौकरी का लाभ नहीं मिलेगा। इसके लिए उन्होंने प्रयास भी किया। आज भी उनके नाम पर कुकडु में शहीद निर्मल महतो हाईस्कूल, ईचागढ़, शहीद निर्मल महतो हाईस्कूल, घोड़ा बांधा जमशेदपुर, शहीद निर्मल महतो इंटर कालेज डुमडुमी, नीमडीह में चल रहे हैं।

साभार – प्रभात खबर

(लेखक-अनुज कुमार सिन्हा)

❖❖

अध्याय 28

धरती आबा
भगवान बिरसा मुण्डा

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारतीय उप- महाद्वीप के कई हिस्सों में जनजातियों की भूमि व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। इसका कारण जनजातीय क्षेत्रों में बाहरी लोगों का बड़ी संख्या में पहुँचना था। इन लोगों में आस-पास के क्षेत्रों से आने वाले किसान थे जिन्हें जमीन की बेइन्तहा भूख थी और जिनकी खेती करने के तरीके बेहतर थे। साथ ही इनमें व्यवसायी और व्यापारी भी थे जिनकी निगाह दूसरों की धन दौलत पर तेजी से जाती थी और वे उसे हड़प लेने की योजनाओं में लगे हुए थे। उस समय देश के अन्य भागों की तरह झारखण्ड प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में भी ब्रिटिश सरकार की स्थापना और उसके पांव जमने के साथ-साथ गैर जनजातीय लोगों का बाहर से यहाँ पहुँचने मे तेजी से वृद्धि हुई। जनजातियों ने इन घटनाओं का विरोध किया। उन्होंने इन बाहरी लोगों को अपने बीच से उखाड़ फेंकने के लिए कठिन प्रयत्न किए और अनेक विद्रोह किए। अपनी भूमि व्यवस्था के क्षत-विक्षत होने और ईसाई धर्म पैगाम के साथ पहुँचाने वाले



मिशनरियों के प्रभाव के फलस्वरूप जनजातियों द्वारा अपनी संस्कृति को पुर्नजीवित करने के लिए भी आन्दोलन हुए। इनका उद्देश्य जनजातीय समाज का, जिस पर कई बाहरी शक्तियों का प्रभाव तेजी से पड़ रहा था का पुनःनिर्माण करना था। इस कारण बाहरी लोगों के विरूद्ध सशस्त्र प्रतिरोधं और संस्कृति को नवजीवन देने की दोहरी प्रक्रिया एक दूसरे के साथ घुल-मिल गयी और उसकी परिणति मुण्डाओं के उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम विद्रोह 'उलगुलान' में हुई जिसका नेतृत्व बिरसा मुण्डा ने किया। झारखण्ड में राँची जिला तथा सिंहभूम जिले का उत्तरी भाग मुण्डाओं के इस विद्रोह का क्षेत्र बना।

बिरसा का जन्म अड़की प्रखण्ड अन्तर्गत ग्राम उलीहातु में 15 नवम्बर, 1875 को हुआ था। इसके पिता का नाम सुगना मुण्डा और माता का नाम करमी था। बिरसा के पूर्वज चुटू मुण्डा और नागू मुण्डा थे। वे पुर्ती गोत्र के थे। वे राँची के उपनगर चुटिया में रहा करते थे। कहा जाता है कि इन दो भाईयों के नाम से इस क्षेत्र का नाम छोटानागपुर पड़ा। चुटिया में अनेक वर्षो तक इनका समय बीता। काल-क्रमानुसार इनकी जनसंख्या में वंश वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप इस उपवंश के मुण्डा अपने रहने के लिए क्षेत्र की खोज में निकल पड़े। वे खूँटी में मरंगहदा के पास तिलमा पहुँचे और वहाँ बस गये। वहाँ से फिर मांझिया मुण्डा के नेतृत्व में आगे बढ़े और तमाड़ में मांझीडीह गाँव की स्थापना की। माँझीडीह से वे रंका और लाका मुण्डा के नेतृत्व में अड़की प्रखण्ड के मुख्यालय से 10 किलोमीटर पश्चिम दुर्गम एवं पहाड़ी मार्ग पर पहाड़ की चोटी पर उलीहातु गाँव बसाया। बाद में उलीहातु विकसित होकर एक बड़ा गाँव के रूप में परिणत हो गया। इसी गाँव में लकारी मुण्डा का जन्म हुआ था जो बिरसा के दादा थे। बिरसा के पिता सुगना मुण्डा का जन्म भी यहीं हुआ था और बिरसा का पैदाइश एवं पैतृक गाँव भी उलीहातु ही था। बिरसा के दादा लकारी मुण्डा मूल रूप से उलीहातु में बस गये थे। उनका विवाह चलकंद में हुआ था और उसके तीन पुत्र हुए। उनमें बिरसा के पिता सुगना मुण्डा का दूसरा स्थान था। सुगना का विवाह अयुबहातु में डीवर मुण्डा की सबसे बड़ी पुत्री करमी से हुआ। उनके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। इनमें से बिरसा का चौथा स्थान था।

ग्राम-उलीहातु में बिरसा वंशजों की आर्थिक स्थिति काफी बिगड़ी हुई थी। परिस्थिति से विवश होकर खेत में काम करने वाले मजदूरों या बंटाईदारों अथवा रैयतों के रूप में काम की तलाश में बिरसा के पिता, माँ और चाचा पसना मुण्डा उलीहातु छोड़कर बीरबांकी के निकट कुडुम्बदा चले गये। वहाँ से परिवार बम्बा चली गयी और फिर चलकद आये। चलकद में आकर वे गाँव के मुण्डा बीरसिंह के यहाँ शरण लिए। बिरसा का परिवार उलगुलान होने तक चलकद में ही रहा और बिरसा ने बचपन भी अपने माता-पिता के साथ काफी दिनों तक चलकद में व्यतीत किया।

गरीबी के कारण कुछ बड़े होने पर बिरसा को अपने मामा घर अयुबहातु ले जाया गया। बिरसा के बड़े भाई कोन्ता मुण्डा 10 वर्ष के उम्र में कुंदी चला गया। वहाँ एक मुण्डा के यहाँ नौकरी करने लगा और काफी अर्से तक वहीं रह गया। उनकी शादी उसी गाँव में हुई। बिरसा आयुबहातु में दो वर्ष तक रहा। वहीं रहते जयपाल नाग द्वारा संचालित सलगा स्कूल में दाखिल होकर आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। कुछ दिनों बाद उनकी सबसे छोटी मौसी जौनी की शादी खटंगा में हो गई। चूंकि बिरसा अपनी मौसी का बड़ा प्यारा था इसलिए शादी के बाद उसे अपने साथ खटंगा लेती गई। वहाँ के ईसाई प्रचारक से उनका सम्पर्क हुआ। वह प्रचारक मुण्डाओं की पुरानी धर्म व्यवस्था की आलोचना किया करता था। यह बिरसा को बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। वह इस चिंता में भाव-मग्न होकर अध्ययन में इतना तल्लीन

रहता था कि वह भेड़-बकरियों को चराने के लिए सौंपे गये कार्यों को भी मन लगा कर नहीं निभा पाता था। इस कारण से उसे कभी-कभी अपनी मौसी तथा अन्य लोगों से डांट भी मिल जाया करता था। फलतः उसने वह गाँव छोड़कर अपने भाई के यहाँ कुंदी चला गया। वह वहाँ कुछ समय तक रहा। वहाँ से वह बुड़जू स्थित जर्मन मिशन सकूल में भर्ती हो गया और वहीं से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त किया। बाद में वह उच्च प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए जर्मन ईसाई मिशन स्कूल चाईबासा में 1886 ई. में अपना दाखिला ले लिया।

चाईबासा में बिरसा चार वर्षों (1886 से 1890) तक रहा। इस बीच उनके साथ एक रोचक घटना घटी। एक बूढ़ी महिला ने उसके माथे की रेखाओं का निरीक्षण करने के बाद यह भविष्यवाणी की थी कि वह एक दिन बहुत बड़ा काम कर दिखाएगा और एक महान व्यक्ति बनेगा। इस अवधि में जर्मन-लुथरेन और रोमन कैथोलिक ईसाइयों के भूमि आन्दोलन चल रहे थे। एक दिन चाईबासा मिशन में उपदेश देते हुए डा. नोट्रोट ने ईश्वर के राज्य के सिद्धांत पर विस्तार से प्रकाश डाला। इस उपदेश के श्रोता के रूप में बिरसा भी उपस्थित था। डा. नोट्रोट का कहना था कि यदि वे ईसाई बने रहेंगे और उनके अनुदेशों का अनुपालन करते रहेंगे तो उनकी छिनी हुई जमीन की वापसी कर दी जाएगी। इस बात से बिरसा को और अन्य लोगों को भी बड़ा धक्का लगा और 1886-87 में मिशनरियों से सरदारों का संबंध विच्छेद हो गया। उसके बाद मिशनरियों ने सरदारों को धोखेबाज कहना शुरू किया। बिरसा ने उसी समय डा. नोट्रोट और मिशनरियों की बहुत ही तीखे शब्दों में आलोचना की। इसका नतीजा यह हुआ कि बिरसा को स्कूल से निकाल दिया गया। इस घटना के बाद उसने अपनी आवाज बुलन्द की 'साहब' साहब एक टोपी है। अर्थात् गोरे अंग्रेज और मिशनरी एक जैसे हैं। चाईबासा में रहकर बिरसा ने उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा पाई और हिन्दी और अंग्रेजी की थोड़ी बहुत जानकारी हुई । हिन्दी बोल लेता था किन्तु अंग्रेजी में बातचीत नहीं कर पाता था। बिरसा 1890 में चाईबासा छोड़ दिया और उसके तुरंत बाद उसने जर्मन ईसाई मिशन की सदस्यता भी छोड़ दी। इसके साथ उनके और भी सहपाठी थे जिन्होंने इनका साथ दिया। उसने जर्मन मिशन त्याग कर रोमन कैथोलिक मिशन धर्म स्वीकार किया। उसके साथ कुछ दिनों तक रहा, पर बाद में उस धर्म के प्रति भी उनके मन में विरक्ति आने लगी। ऐसी बात सरदारों के आन्दोलन के साथ भी हुई। उनलोगों ने जिन मांगों को लेकर रोमन कैथोलिक मिशन का समर्थन प्राप्त करना चाहा था। उस ओर से वे निराश होकर अपनी पुराने धर्म की ओर लौट आये। इस तरह से वे मिशन धर्म का त्याग कर अपनी धर्म की आस्था पर विशेष बल देने लगे।

चाईबासा से लौटने के बाद बिरसा करीब एक वर्ष तक अपनी बड़ी बहन दसकीर के यहाँ कांडेर गाँव में समय बिताया। सन् 1891 में वह बन्दगांव चला गया। वहां आनन्द पॉड़ से उनकी मुलाकात हुई। आनन्द पाँड़ बन्दगांव के गैर मुण्डा आदिवासी जमींदार जगमोहन सिंह का मुंशी था। वह स्वांसी जाति का एक धार्मिक व्यक्ति था। उससे मिलकर बिरसा ने वैष्णव धर्म के प्रारंभिक सिद्धांतों और रामायण, महाभारत की कथाओं का श्रवण

कर ज्ञान हासिल किया। बिरसा ने उसे गुरू माना और उनके साथ वह तीन वर्षो तक रहा। उनके साथ वह गौडबेड़ा, बमनी और पाटपुर आदि गांवों का भ्रमण किया था। इस क्रम में बमनी में एक वैष्णव साधु से उनकी मुलाकात हुई। साधु उसे तीन महीने तक उपदेश देते रहा। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर बिरसा ने मांस खाना छोड़ दिया और जनेऊ के रूप में कच्चा धागा धारण कर शुद्धता और धर्म परायणता का जीवन व्यतीत करने में विशेष जोर देने लगा। वह तुलसी की पूजा करने लगा और माथे पर चंदन टीका लगाना शुरू किया। उन्होंने गो वध को भी रूकवाया। आनन्द पांड़ के अधीन बिरसा की शिष्यत्व की अवधि 1893-94 में समाप्त हो गयी। बिरसा का यह समय व्यक्तित्व निर्माण का था। 1894 तक में बिरसा बढ़ कर बलिष्ठ और सुन्दर युवक बन चुका था। ईसाई धर्म उसके चारो ओर एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर रहा था, उनके बचपन को एक विशेष सांचे में ढाला और इसके कारण ही उसे अच्छी स्कूली शिक्षा मिल पाई। बाद में वह ईसाई और वैष्णव धर्म के मिश्रित प्रभाव में आकर धार्मिक आन्दोलन की ओर प्रेरित हुआ। बाद में वह सरदारों के भूमि संबंधी आन्दोलन की ओर प्रेरित हुआ। सरदारों के भूमि संबंधी आन्दोलन के अदम्य प्रभाव ने बिरसा को मिशनरियों से भिड़ने तथा स्कूल छोड़ने के लिए बाध्य किया। बिरसा ने सरदारी आन्दोलन का अनुसरण किया और आनन्द पाँड़ का साथ छोड़ा। बाद में वह वन एवं भूमि संबंधी अधिकारों की मांगों को लेकर चल रहे सरदारी आन्दोलन में विशेष रूप से भाग लिया।

अब बिरसा का जीवन एक सरदार की तरह व्यतीत हो रहा था। अन्तर इतना था कि वह धार्मिक प्रभाव में रहता था। उनके जीवन में कई तरह की विलक्षण घटनाएँ घटती रही और आगे चलकर 1895 तक में वह एक पैगम्बर बन गया। उसके बाद वह चोट लगे लोगों एवं बीमारियों को छूने मात्र से ठीक करने लगा। इस तरह से उनके सात्विक धर्म का सूत्रपात हुआ। वह मुण्डाओं के बीच प्रचलित बोंगा एवं पूजा प्रथा से नफरत करने लगा। बलि प्रथा का विरोध किया और एक नये धर्म का सृजन किया जिसे 'बिरसाइत धर्म' कहा जाता है। सन् 1895 में बरसात के समय एक दिन उसे बिजली की कड़क के साथ सर्वोच्च प्रभु की दर्शन हुई। उसे भगवान का संदेश मिला। इस संदेश का संबंध उसकी अपनी जनता की मुक्ति से था। यह बात सुनकर बिरसा के दर्शन के लिए लोगों की भीड़ चलकद की ओर उमड़ पड़ी। उन्होंने बिरसा को जनेऊ और काठ की खड़ाऊ पहने देखा। उनसे बातें की और उनकी चमत्कारिक कामों को देखकर लोगो को यह एहसास हुआ कि बिरसा को दुनिया की सभी शक्तियाँ प्राप्त हो गयी। लोग उनके प्रवचन सुनते थे और साथ मिलकर ईश्वर की प्रार्थना करते थे। बिरसा चेचक और महामारी के समय बीमारों एवं पीड़ितों की सेवा करने लगा था। बिरसा की प्रार्थना में जिनको विश्वास था वे अच्छे हो जाते थे।

अब तक बिरसा का आन्दोलन केवल सुधारवादी सिद्धांतों के आधार पर चल रहा था। किन्तु उनके आन्दोलन में भीतर ही भीतर ईसाई मिशनरियों के विरूद्ध विरोध का स्वर था।

क्योंकि बिरसा की ईसाई धर्म विरोधी रूख पर मिशनरी के अधिकारी क्षुब्ध थे। बिरसा का आन्दोलन धीरे-धीरे स्वतंत्र जन आन्दोलन के रूप में भी विकसित हो रहा था। इसमें सरदारों का शमिल होना महत्वपूर्ण था। उन्हीं के प्रभाव के कारण आन्दोलनकारी सरदार के रूप में उभरने की बिरसा की दमित आकांक्षा उभर कर सामने आने वाली थी।

1893 में निर्दोष और धार्मिक रंग लिए हुए आंदोलन की शुरूआत हुई। धीरे-धीरे वह एक भूमि संबंधी राजनीतिक आंदोलन का स्वरूप ले लिया। इस परिवर्तन के पीछे सरदारों का बढ़ता प्रभाव काम कर रहा था। सरदार आंदोलन के प्रभाव से बिरसा के उपदेश का स्वर भी बदल गया। वह अब मुण्डाओं के अलावा और किसी को भी प्रोत्साहित करने को तैयार न था। अन्य बाहरी लोगों के प्रति उसे नफरत हो गया था। अपनी एक सभा में उसने अपनी जाति के शोषकों के विरूद्ध आवाज उठाई। गुस्से से आग बबुला हो गया और अपने हाथ-पैर पटकने लगा। लोग यह दृश्य देखकर डर गये वास्तव में उसका गुस्सा जमीनदारों पर था। लोग उन्हें बाबू कहते थे, उसने बाबू न कहने के लिए आवाज बुलंद किया।

यद्यपि बिरसा पर सरदारों का प्रभाव था, किन्तु वह उनका प्रवक्ता न था। इतना सही है कि सरदार आंदोलन और बिरसा आंदोलन दोनों की ही जड़ में भूमि संबंधी पृष्ठभूमि कायम थी। इस प्रश्न को लेकर वर्षो तक मुण्डाओं के बीच घोर चिंता और असंतोष चल रहा था। शुरू में सरदारों ने अंग्रेजों के प्रति और यहाँ तक की छोटानागपुर के राजा के प्रति भी निष्ठा प्रकट की थी। वे लोग सिर्फ बिचौलिये को समाप्त करना चाहते थे। बाद में उनमें से कुछ यूरोपियों के खिलाफ हो गया और सितम्बर 1892 में अपनी जनता के समस्याओं के समाधान के लिए हिंसा पर भी उतारू हो गए। पर उनके सामने कोई स्पष्ट और ठोस राजनीतिक कार्यक्रम न था। ऐसा कार्यक्रम 1895 में बिरसा ने पेश किया पर वह भी कुछ अस्पष्ट सा था। बिरसा का उद्देश्य अपने को मुण्डा राज्य का प्रधान बनाना था। साथ ही वह धार्मिक और राजनीतिक स्वतंत्रता भी हासिल करना चाहता था। जब सरदारों ने देखा की उनके आंदोलन के सफल होने की संभावना नहीं है तो उन्होंने बिरसा आंदोलन के साथ अपने को जोड़ लिया और वे बिरसा की योजना के अनुसार काम करने लगे। फल यह हुआ कि उनके बेढंगे से विचार भी बिरसा आंदोलन को प्रभावित करने लगे। बिरसा के अनुमोदन लेकर या उनके बिना ही सरदारों ने आंदोलन की तैयारियाँ शुरू कर दी थी और हथियार इकट्ठे किये जा रहे थे। यद्यपि 24 अगस्त, 1895 को विद्रोह छिड़ जाने की संभावना न थी, पर शीघ्र ही छिड़ सकता था, यह तय सी बात थी।

आन्दोलन छिड़ने की आशंका से बिरसा को गिरफ्तार करने के लिए सरकार की षडयंत्र चलने लगी। 22 अगस्त, 1895 तक सरकार ने बिरसा को गिरफ्तार करने का निर्णय नहीं लिया था। कमिश्नर चाहते थे कि या तो बिरसा को एक संदिग्ध पागल अथवा शन्ति भंग करने की आशंका उत्पन्न करने वाली कार्रवाईयों में लगे व्यक्ति के रूप में पकड़ कर लाया जाय। जिला पदाधिकारियों की एक बैठक में बिरसा की गिरफ्तारी की योजना पर

विचार हुआ। इस योजना के अनुसार भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 353 और 505 के अधीन गिरफ्तारी का वारंट जारी किया गया। निर्देशानुसार पुलिस पार्टी चलकद की ओर रवाना हो गयी। चूंकि उस वक्त बिरसा चलकद में ही थे। पार्टी तीसरे पहर तीन बजे बंदगांव से 14 मील की दुर्गम रास्ते तय कर चलकद पहुंची और बिना किसी झंझट के बिरसा को गिरफ्तार कर ले जाया गया। बंदी बिरसा रांची में 4 बजे शाम को लाया गया। उसे कमिश्नर के सामने पेश किया गया और शाम को करीब 7 बजे बिरसा को जेल ले जाया गया उस पर मुकदमा चला। मुकदमा चलाने का स्थान राँची से बदलकर खूँटी ले जाया गया जो कि मुण्डा क्षेत्र का केन्द्र स्थान था। इस मुकदमें में बीस गवाहों की जाँच की गयी। अभियुक्त बिरसा ने अपने बचाव में कुछ न कहा और न गवाहों से जिरह की। बिरसा और अन्य अभियुक्त को भारतीय दंड संहित्रा की धारा 505 के अधीन 19 नवम्बर, 1895 को दोषी ठहराया गया। उन लोगों को दंगा कराने के अपराध के लिए अतिरिक्त अल्पकालिक सजाएं दी गयी और मुख्य अपराध के लिए दो वर्ष के सश्रम कारावास की सजा दी गयी। बिरसा को 50 रूपया जुर्माना भी किया गया और जुर्माना न देने की स्थिति में छः महीने सश्रम कारावास की सजा सुनाई गयी। अन्य लोगों में से हरेक को बीस-बीस रूपये का जुर्माना किया गया। उन्हें जुर्माना न देने की स्थिति में तीन महीने के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गयी। उच्च न्यायालय में अपील करने पर दंडादेश में परिवर्तन किया गया और ढाई वर्ष की सजा घटाकर दो वर्ष कर दी गयी।

बिरसा के आंदोलन के दमन और उस बारे में की गयी सरकारी कार्रवाई से एक परिणाम यह हुआ कि घटनाओं ने अत्यधिक सरलता और शीघ्रता के साथ विपरीत दिशा में पलटा खाया। नये लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया और जो ईसाई धर्म छोड़कर बिरसा की ओर चले गये थे, वे पुनः ईसाई धर्म की छत्रछाया में आ गये। लोगों ने सरकार द्वारा प्रतिशोध के कदम की आशंका से बहुत ही ज्यादा भयभीत होकर पादरी की आड़ में शरण लेना श्रेयस्कर समझा।

सजा सुनाये जाने के बाद बिरसा को राँची की जेल से हजारीबाग जेल भेज दिया गया। उसने वहाँ दो वर्ष की सजा भोगी। सजा खत्म होने के कुछ दिनों पूर्व उसे राँची जेल फिर भेज दिया गया ताकि उसके रिहाई के बाद उसके गतिविधि पर राँची की पुलिस निगाह रख सके। बिरसा को 30 नवम्बर, 1897 को जेल से रिहा किया गया। उसे पुलिस चलकद ले आई और चेतावनी दी गयी कि वह अब पुरानी हरकतें नहीं करेगा। अगले महीने 7 तारीख को डिप्टी कमिश्नर ने चलकद में उससे मुलाकात की। बिरसा ने वादा किया कि अब वह किसी तरह का उपद्रव नहीं करेगा।

बिरसा के जेल से निकलने के कुछ दिनों बाद उसके अनुयायी उससे मिले। उन्होंने उससे निवेदन किया कि एक संगठन फिर से खड़ा किया जाये। उन्होंने कहा कि अपने खोये अधिकारों को फिर से हासिल करने और दुश्मनों को मार भगाने के लिए संगठन बनाना

नितांत आवश्यक था। अनुयायी एवं शिष्यगण दो टुकड़ियों में बांट दिए गये। एक टुकड़ी पर धार्मिक प्रचार का भार था और दूसरी विद्रोह की तैयारियों में लग गयी थी। राजनीतिक संगठन कार्य में सरदारों का बोलबाला था। इस प्रकार से बिरसा के धार्मिक आन्दोलन के तैयारी के सिलसिले में आन्दोलन का स्वरूप ही बदल गया था। धार्मिक संगठभ के इस स्वरूप से राजनैतिक आन्दोलन की तैयारी में आसानी हुई।

जैसी की विद्रोह की योजना बनाई गयी थी, बड़ा दिन (क्रिसमस) के एक दिन पूर्व अर्थात् 24 दिसम्बर, 1899 को आग लगी और तीरों से प्रहार किया। सिंहभूम जिले के चक्रधरपुर थाने और राँची जिले के खूँटी, कर्रा, तोरपा, तमाड़ और बसिया थानों के अन्तर्गत विद्रोह की आग दहक उठी। खूँटी थाने का क्षेत्र इस आन्दोलन का केन्द्र था। आन्दोलन के सिलसिले में मुरहू एंग्लिकल स्कूल भवन पर दो तीर चलाये गये। किन्तु तीर से किसी को चोट न लगी। सरवदा ईसाई मिशन में रात 9 बजे के बाद गोदाम में आग लगा दी गयी। कुछ गाँव में घर जलाये गये। सिंहभूम के पोड़ाहाट क्षेत्र में तीरों के प्रहार के बजाय अगलगी की घटनाएं ज्यादा हुई। कुन्द्रुगुटु में 28 जनवरी को जर्मन मिशन का गिरजा घर जला दिया गया। इस तरह की कई घटनाएं जहाँ-तहाँ घटने लगी। बिरसा के अनुयायी जोर-शोर से नारे लगाते थे 'हेन्दे राम्बड़ा रे केच्चे, केच्चे, पुण्डी राम्बड़ा रे केच्चे-केच्चे'। इसका मतलब यह हुआ कि काले ईसाईयों और गोरे ईसाईयों का सर काट दो। परंतु कोई ईसाई न मारा गया। कुछ ईसाई विद्रोहियों के प्रहार से घायल अवश्य हुए थे।

इन सब घटनाओं को देखकर बिरसा की गिरफ्तारी की कोशिशें फिर शुरू हुई। उधर राँची के डिप्टी कमिश्नर के आदमी बिरसा की खोज में पोड़ाहाट की जंगलों की खाक छान रहे थे और इधर खूँटी क्षेत्र में बिरसा के अनुयायियों ने आम बगावत की तैयारियाँ शुरू कर दी। 9जनवरी को 8 बजे सुबह सईलरकब पहाड़ी पर विद्रोही मुण्डाओं की एक बड़ी बैठक होने जा रही थी। यह जगह डोम्बारी से कुछ दूर और सैको से करीब तीन मील उत्तर है। बैठक के लिये 25 दिसम्बर, 1877 से ही विद्रोही बड़ी संख्या में तीर-धनुष और मशाल लेकर सईल रकब पहुंचने लगे थे। वहाँ वे घमासान लड़ाई के लिए तैयारी किए हुए थे। यह खबर सुनते ही पुलिसकर्मी उन्हें गिरफ्तार करने के लिए उस पहाड़ी तक पहुंच गये।

स्ट्रीटफील्ड ने विद्रोहियों को चेतावनी दी कि यदि उन्होंने तुरंत आत्मसमर्पण न किया तो उनपर गोलियां चलाई जाएगी। पर विद्रोही इसी तरह अड़े रहे और बिना भयभीत हुए विरोध भाव के साथ उन्होंने चिल्लाकर जवाब दिया कि वे लड़ने के लिए पूरी तरह से तैयार हैं। गोलीबारी शुरू हुई । इसका जवाब विद्रोहियों ने पत्थरों और तीरों से दिया। गोली की बौछार से अनगिनत लोग मारे गये जिसमें महिलाएँ एवं बच्चे भी शामिल थे। खून की नदियां बही, बहुत बच्चे अनाथ हुए औरतें विधवा हुई, परिवार उजड़ गया। किन्तु वे अपने मैदान में डटे रहे। गोली का जवाब तीरों से देते रहे। विद्रोहियों में से बहुतेरे गिरफ्तार हुए अन्ततः 3 फरवरी, 1900 को बिरसा भी पकड़े गये। उन्हें राँची जेल भेज दिया गया। 9 जून,

वंशावली

लकारी मुण्डा
(विवाह चालकद में)

- कानु पाहन
  - जगाई
    - बरनावस
    - जोसेफ
  - हानुक
  - उदय
    - पैलूस
    - पासना
  - नाथानिइल
- सुगना
- पासना (शादी बाम्बा मे)
  - चीता द्वारा लड़के की मृत्यु
  - 3 लड़कियों का विवाह तूविल केबरा के समीप कारूडीह और बाड़ेडीह (तमाड़) में
- लड़की?

सुगना मुण्डा (बिरसा परिवार)
(शादी आयुबहातू, खूंटी में)

- कोन्ता (विवाह कुंदी में)
  - सुगना (नाबलिग में मृत्यु)
  - चार लड़कियों की शादी (बरटोली, गाड़ीग्राम, बाड़ीनिजकेल एवं तुबिल) पांचवे की नाबालिग में मृत्यु
- दसकीर (विवाह कान्दर में)
- चम्पा (विवाह पंगुरा में)
- बिरसा
  - परिवार (दत्तक पुत्र)
    - नारायण सिंह (बारोगड़ा, अड़की प्रखण्ड)
- कानु (ससुराल बाड़ीगरा में बस गये)
  - मोगाला

बिरसा की माँ का परिवार (आयुबहातू में)
दिबर मुण्डा

- करमी (बिरसा के पिता सुगना से शादी)
- सोहराई
- जौनी (शादी खटांगा में)

1900 को सुबह 9 बजे अचानक उसकी मृत्यु जेल में ही हुई। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु हैजा के प्रकोप से हुई। किन्तु संभावनाएँ व्यक्त की जाती रही है कि उसे जहर देकर मार दिया गया। इस तरह से छोटानागपुर की धरती के एक वीर सपूत का इन्तकाल हो गया।

बिरसा आन्दोलन के परिणाम स्वरूप 1908 का छोटानागपुर काश्तकरी अधिनियम बना। इस अधिनियम द्वारा एक शताब्दी से चली आ रही भूमि उपद्रवों की काली रात खत्म हो गयी। इस प्रकार छोटानागपुर में बिरसा आन्दोलन ने जो तहलका मचा रखा था, वह इस क्षेत्र के स्वतंत्रता पूर्व इतिहास की सारी अवधि तक गूंजती रही। छोटानागपुर के सभी आन्दोलनों के संदर्भ में एक विशिष्ट किस्म के मुण्डा राज्य और धर्म स्थापना की संभावना तथा परिवर्तन लाने के लिए उग्र साधनों की धारणा भले ही क्षीण मानी जाय, किन्तु क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक के रूप में बिरसा और उसके आन्दोलन को मान्यता मिल चुकी है। यह बिरसा के अदम्य साहस, लगन एवं सिंगबोंगा के प्रति असीम आस्था का फल है जिसे बिरसा ने 25 वर्ष की कम अवधि में ही हासिल किया था। इसलिए बिरसा को भगवान तुल्य धरती आबा के रूप में माना गया है।

(लेखक-डॉ. प्रकाश चन्द्र उरांव)

❖❖

अध्याय 29

सिंहभूम के महान सेनानी हो वीर घासी सिंह

इतिहास गवाह है, समय साक्षी है, आज राजधानी में जब विभिन्न भागों से आदिवासियों की नाचती-गाती टोलियाँ आम जनता के सामने से निकलती हैं तब क्या कभी किसी ने इस बात की कल्पना भी की थी कि इनमें उन लोगों की संतानें भी हैं जिन्होंने अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए अंगरेजों को चुनौती दी थी। दुनिया को जीतने वाले अंगरेजों के आधुनिक शस्त्र, 'हो' वीरों के तीर-धनुष के समक्ष टिक नहीं सके। इतिहास के पन्नों को देखने से पता चलता है कि किसी समय 'हो' समुदाय के लोगों का भारत में काफी दबदबा था। इनकी सभ्यता ऊँची थी। इस समुदाय के भी अनेक राजा-महाराजा एवं अनेक वीर पुरुष थे। कुछ लोगों का मानना है कि हड़प्पा सभ्यता 'हो' लोगों की सभ्यता थी। मगर वक्त एवं परिस्थिति के साथ 'हो' समुदाय की स्थिति बदल गयी। बाहरी लोगों का दबदबा बढ़ने लगा और हो समुदाय के लोगों को जंगलों की ओर खदेड़ दिया गया अर्थात् यह कहावत सही चरितार्थ होती है-'डोंडो बिङ पंडुनाग बईयना अण्डोः बुरू रेन कुला बिलय बईयना।"

अर्थात् "ढोंढ़ साँप नाग साँप बन गया और जंगल का राजा सिंह बिल्ली बन गई।"

'हो' लोग सिंहभूम को ही अपनी जन्मभूमि एवं कर्मभूमि मानते हैं। ये लोग खूँटी, हालदा, सरवदा, हेसाडीह, चाकी आदि स्थानों से गुजरते हुए टेबो घाटी को पारकर पोड़ाहाट पहुँचे। पोड़ाहाट में पहले से भुइयाँ जाति के लोग रह रहे थे। जगन्नाथपुरी से तीर्थयात्रा में आते समय दो मारवाड़ी वहाँ के महापात्र के अतिथि के रूप में आए और वहीं बस गए। इन लोगों ने 'हो' एवं 'भुइयाँ' जाति में संघर्ष करा दिया। इसी संघर्ष के कारण हो लोग दक्षिणी-पूर्वी दिशा में बढ़कर कोल्हान क्षेत्र में आ गए जहाँ सराक (सरावक) जाति के लोग रहते थे। हो लोगों ने सिंह दिशुम का निर्माण किया। सिंह दिशुम के निर्माण के बाद 'हो' एवं भुइयाँ जाति के बीच अक्सर संघर्ष होते रहते थे तथा भुईयाँ जाति के लोग हमेशा पराजित होते थे। हो जनजाति के लोग प्रारम्भ से ही शूरवीर थे मगर इनकी वीरता की गाथा आज इतिहास के पन्नों में अंकित न के बराबर मिलता है। शायद उन वीर सपूतों के रक्त का कोई मोल नहीं समझा गया। इतिहास विस्तृत होना चाहिए मगर आज हम इतिहास के उन वीरगाथात्मक पन्नों को पलटते हैं तब किसी भी वीर सपूत की सही-सही तिथि, जन्मकाल, मृत्युकाल, स्थान आदि

का विवरण घटनाक्रम के आधार पर नहीं मिलता है। मिसाल के तौर पर हम यहाँ 'हो' वीर घासी सिंह को लेते हैं जिनके जन्मतिथि व स्थान आदि का विवरण इतिहास पर कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। विवरण मिलता भी है कि सिर्फ उनके संघर्षमय जीवन का वह भी नहीं के बराबर।

प्राचीन काल में मुण्डा जाति 'कोल' के नाम से जानी जाती थी और यह 'कोल' शब्द आर्यों द्वारा अभिहीत किया गया था, बाद में 'हो' लरका कोल या 'लरका हो' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। 'लरका कोल' या 'लरका हो' का अर्थ लड़ाकू आदमी होता है। यह सम्बोधन 'हो' की युद्ध प्रियता एवं बहादुरी का साक्ष्य है। 'हो' लोग सात सौ सरण्डा जंगल के शेरों एवं एशिया में जापान और यूरोप में स्कॉटिश हाईलेन्डर्स की तरह स्वतंत्र थे। पोड़ाहाट एवं खरसावाँ के राजाओं ने सिंह दिशुम को अपनी मुट्ठी में रखने का प्रयत्न किया मगर असफल रहे। छोटानागपुर के महाराजा दूधनाथ शाहदेव ने पोड़ाहाट के राजा की मदद से लगभग 20 हजार लोगों के साथ सिंहदिशुम पर 18वीं शताब्दी के मध्य दो बार आक्रमण किया। वे कामयाब नहीं हो पाए। हार-जीत के उतार-चढ़ाव के बाद पोड़ाहाट, खरसावाँ एवं सराइकेला के राजाओं ने सिंहदिशुम पर ब्रिटिश सरकार की मदद से नियंत्रण करने की कोशिश की। लगातार 12 वर्षों तक कोशिश करने के बाद 1 फरवरी, 1820 को पोड़ाहाट के 49वाँ राजा घनश्याम सिंह ने ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता किया। इसी समझौता के अनुसार 18 मार्च, 1820 को मेजर रेफसेज ने सिंहदिशुम पर एक बटालियन के साथ आक्रमण किया। वह 200 घुड़सवार फौजों के साथ देवो घाटी को पार कर राजा घनश्याम सिंह की राजधानी पोड़ाहाट पहुँचा। राजा ने उनका स्वागत किया और मेजर रफसेज से अनुरोध किया कि ब्रिटिश सरकार यदि उनके पाउड़ी देवों को घनश्याम सिंह के चचेरे भाई ठाकुर विक्रम सिंह सराईकेला के राजा से वापस दिला दे तो सिंहदिशुम को ब्रिटिश के अधीन कराने में वे हर सम्भव मदद करेंगे।

20 फरवरी, 1820 को राजा घनश्याम सिंह और खरसावाँ के राजा ठाकुर चैतन सिंह को साथ लेकर मेजर रफसेज ने सिंहदिशुम पर विजय पाने के मकसद से सराईकेला के राजा ठाकुर विक्रम सिंह के यहाँ पहुँचे। अपने जीवन का सबसे बड़ा खतरा मोल लेकर वे कई वर्षों से स्वतंत्र रह रहे 'हो' लोग को ब्रिटिश सरकार के अधीन करने की साजिश रचा। 22 मार्च, 1820 को मेजर रफसेज राजाबासा गाँव में अपना पड़ाव डालने वाला था। उनके पहुँचने से पहले ही 'हो' लोगों ने पानी के सभी स्रोतों को काट दिया। इससे वह दूसरे गाँव में अपना पड़ाव डाला। मेजर रफसेज 23-24 मार्च 1820 तक राजावासा पीड़ के हो -मुण्डाओं को अपने अधीन करने का अभियान शुरू किया।

25 मार्च, 1820 को मेजर रफसेज ने गुमला (गुमुआ) पीड़ के चाईबासा पहुँचकर अपना पड़ाव डाला। 'हो' लोगों ने अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए अपने को संगठित किया। इन लोगों के बीच वीर घासी सिंह एक मसीहा के रूप में उदित हुए। इन्होंने हो वीरों

के संगठित समूह का नेतृत्व किया। इन्होंने अपनी जन्मभूमि में मेजर रफसेज को अपने फौजों के साथ घूमते देखा। इसके विरोध के रूप में घोड़ों के लिए घास काटनेवाले तीन फौजी की 'हो' वीरों ने हत्या कर दी। इसका बदला लेने के लिए 26 मार्च, 1820 को मेजर रफसेज ने चाईबासा के पश्चिम के गांवों पर फौजों को हमला करने का आदेश दिया। गाँवों में हमला होते ही लगभग 300 हो लड़ाकू वीर गड़ासे, तीर-धनुष एवं अन्य घातक हथियारों से लैश होकर बन्दूकों की गोलियों की परवाह किये बिना कप्तान मेलार्डए के साथ लड़ने लगे। इस लड़ाई में 55 हो लड़ाकू शहीद हुए। इसके बाद साठ लड़ाकू हो वीरों का दूसरा दल लड़ना शुरू किया। वे साठों शहीद हो गए। काफी लोग हताहत हुए। गाँव श्मशान में बदल गया। मगर हो वीरों को वे अपने मुट्ठी में नहीं कर सके। इसी कारण ब्रिटिश फौजों ने महिलाओं पर बर्बरतापूर्ण अत्याचार करना शुरू कर दिया। इस अत्याचार को देखकर कुछ हो वीरों ने जब्त की गई ब्रिटिश सरकार की डाक बग्गी को वापस कर दिया। डाक बग्गी वापस मिलने के बाद कप्तान मेलार्ड की फौज नरसंहार करते हुए दो बजे रात को दोपाई गांव से चाईबासा लौट आए।

इस सफलता के बाद 26 मार्च, 1820 को मेजर रफसेज अपने काफिले के साथ जैन्तगढ़ की ओर जा रहे थे। काफिला बड़नंदिया (बलांड़िया) गाँव पहुँचा। तब उसकी आँखे शूल की तरह चुभ रही थीं। तीरों की वर्षा होने लगी। हो लड़ाकू टिड्डी दल की तरह ब्रिटिश फौज पर टूट पड़े। किसी तरह वह जैन्तगढ़ पहुँचा। और आगे के अभियान के लिए दुभाषियों का सहयोग लिया। 8 अप्रैल, 1820 की आधीरात को कप्तान मेलार्ड अपनी फौजों में "हो" भाषा जाननेवाले एवं खरसावाँ के राजा ठाकुर चैतन सिंह को साथ लेकर चला। सात बजे सुबह वे बलांडिया गांव पहुँचे। गांव खाली था। कुछ बूढ़ी महिलाएं थीं। उन लोगों ने महिलाओं से पूछताछ करने के बाद पूरे जंगल (कलाबुरू) को घेर लिया। हो वीरों ने पुनः तीरों की वर्षा शुरू कर दी। कई हो लड़ाकू शहीद हो गये। बन्दूकों की गोलियों का सामना करते हुए वीरतापूर्वक तीरों का बौछार कर कप्तान मेलार्ड को उन्होंने पानी पिला दिया।

छोटानागपुर के अभिमानी नेपालियन मेजर रफसेज ने लड़ाकू हो वीरों की वीरता की सूचना गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स को दी। राजा धनश्याम सिंह ने छह महीने में ब्रिटिश कम्पनी को मात्र 900/- रुपये कर दिया। मेजर रफसेज ने सूबेदार बहोरन सिंह के नेतृत्व में ब्रिटिश फौजों के आतंक का रास्ता अपनाते हुए लोगों ने पोरवरिया गांव के मानकी की दो बेटियों के साथ बलात्कार भी किया। इस घटना के बाद नगाड़े की चोट पर पन्द्रह सौ लड़ाकू हो लोग जमा हो गए। उन्होंने निर्णय लिया कि ब्रिटिश सरकार को संरक्षण देनेवाले राजाओं एवं दिकुओं को सिंहदिशुम से मार भगाया जाए तथा सिंहदिशुम के आने-जाने के सभी रास्ते बन्द कर दिये जाएं। इससे बम्बई से कलकत्ता जानेवाले रास्ते में खतरा उत्पन्न हो गया। हो लड़ाकुओं ने चैनपुर किले पर आक्रमण किया और राजा घनश्याम सिंह के इलाके के गाँव चक्रधरपुर, कुला, चैनपुर एवं सोनुवा पर कब्जा कर लिया। राजा घनश्याम

सिंह भाग खड़ा हुआ और चक्रधरपुर के धरमदास गोसाई द्वारा मेजर रफसेज को हो लोगों के आक्रमण करने की खबर भिजवाया। इस समाचार को सुनकर मेजर रफसेज का गुस्सा आकाश छूने लगा। उन्होंने गवर्नर जेनरल लार्ड हेस्टिंग्स से इसके लिए सहायता मांगी। हेस्टिंग्स ने 14 मार्च, 1821 को सम्बलपुर, कटक, मिदनापुर एवं बांकुड़ा से फौज भेजने का आदेश दिया। फौजों को सिंहदिशुम के बारे में सभी जानकारियां दी गईं।

फौजों ने सिंहदिशुम को चारो ओर से घेर लिया। बन्दूकें, तोपों एवं आधुनिक हथियार से लैस ब्रिटिश फौजों के समक्ष लड़ाकू हो लोग टिक नहीं पाए। उन लोगों ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया एवं बन्दूक की नोक पर पाँच शर्तों पर हो लोगों.को समझौता कराया गया।

(1) हम लोग स्वयं को ब्रिटिश सरकार की प्रजा मानते हैं तथा सरकार के प्रति विश्वासी तथा आज्ञाकारी रहेंगे।

(2) वैधानिक जमीन्दार एवं राजाओं को खेत का लगान देंगे। (आठ आना प्रति हल के हिसाब से कृषिकर)।

(3) अपने इलाके के सभी सड़कों को खुला रखेंगे तथा सभी यात्रियों की सुरक्षा करेंगे।

(4) सभी जातियों के लोगों को अपने गाँव में बसने देंगे तथा अपने बच्चों को हिन्दी एवं उड़िया पढ़वायेंगे।

(5) जमींदारों द्वारा दमन किये जाने पर हथियार नहीं उठायेंगे, बल्कि सरकार के सक्षम अधिकारी से शिकायत करेंगे।

इस संधिपत्र पर सिंहभूम के सभी लड़ाकू सरदारों से दस्तखत कराया गया। संधि के बाद जब कप्तान रिचर्ड फौजों के साथ बांकुड़ा प्रस्थान कर रहा था तब हो वीरों ने पुनः हमला कर दिया। फौज की टुकड़ी को तहस-नहस कर दिया गया तथा कटक की ओर लौट रहे कप्तान गुडस को घायल कर दिया। मेजर रफसेज जीतकर भी हार गया। बन्दूक की नोक पर समझौता किया गया मगर ब्रिटिश कम्पनी को बदला चुकाना पड़ा। फौज अभियान में मेजर रफसेज का वही हाल हुआ जैसे मास्को अभियान के समक्ष यूरोप में नेपोलियन का पतन हुआ। 14 जनवरी, 1822 को मेजर रफसेज का देहान्त हो गया साथ ही सिंहदिशुम ब्रिटिश के नक्शा से हट गया। कलकत्ता में यूरोपियन अधिकारियों ने सिंहदिशुम को स्वतंत्र छोड़ देने का निर्णय लिया और यह स्वीकार कर लिया कि "पृथ्वी पर हो लोग आजाद रहेंगे।"

मगर फरवरी 1830 में पुनः एक बार आजादी की चिनगारी भड़की और हो जनजाति के प्रायः 1200 वीरों ने जैन्तगढ़ पर हमला कर दिया। कम्पनी द्वारा नियुक्त शासक रघुनाथ बी. सी. के घर को लूटा गया। सिंहदिशुम में विद्रोह ही विद्रोह होने लगे। सिंहदिशुम की इस विषम परिस्थिति को देखकर ब्रिटिश कम्पनी ने पुनः सिंहदिशुम पर कब्जा करने के लिए गवर्नर जनरल विलियम बेंटिक को मेजर थॉमस विल्किन्सन का एजेन्ट नियुक्त किया। सिंहदिशुम के 'हो' भारतवर्ष के सबसे दुस्साहसी और उत्तेजित होनेवाले कबीले होने के

कारण विल्किन्सन ने हिंसात्मक रास्ता इन पर भी अपनाया। 1836 ई. में लगभग 150 लड़ाकू हो विद्रोहियों को गिरफ्तार कर राँची के अपर बाजार किशनपुर जेल में बन्द कर दिया गया। उन बन्दियों में वीर घासी सिंह भी थे। एक दिन घासी सिंह व अन्य बन्दी मिलकर जेल के फाटक को तोड़कर भागने का प्रयास भी किये। जिसमें 66 हो विद्रोही जेल के फाटक पर मारे गए। 12 घायल हुए और वीर घासी सिंह के साथ 4 आन्दोलनकारी वहाँ से भागने में कामयाब रहे।

29 दिसम्बर, 1836 को विल्किन्सन अपने फौजों के साथ बागबिला से अंगरडिया पहुँचा। 10 जनवरी, 1837 को यह मझगाँव पहुँचा। वहाँ के हो सरदारों को समझा बुझाकर ब्रिटिश अधीनता स्वीकार कराया गया। लेकिन इचाकुटी के बुरून्डा सरदार एवं हडुवाकोनों के सरदारों ने ब्रिटिश की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। मगर विल्किन्सन ने फरवरी 1837 में सिंहदिशुम को किसी तरह से अपने कब्जे में कर लिया। बामनघाटी के पीडो एवं कोल पीड़ को मिलाकर उसने "कोल्हान" में बदल दिया। तब से कोलपीड़ को 'कोल्हान' के नाम से जाना गया। विल्किन्सन ने कोल्हान में अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए 31 नियमों की सूची बनायी जिसे 'विल्किन्सन रूल' के नाम से आज भी जाना जाता है।

गुमला के वीर घासी सिंह, राजाबासा के पोटो सरदार बलान्डिया के बेराई डेबाय, नारा, टोपाये, इचाकुटी के जोटो पाटा डुमरिया के पांडुवा, जोंकों सरबिल के कोचे सुरदन आदि हो सरदारों ने ब्रिटिश हुकूमत को ठुकरा दिया। लालगढ़, गुमला, आवला और बढ़ पीड़ के लोगों को एकत्रित कर उसने वैतरणी नदी के किनारे सभा की। इसमें निर्णय लिया गया कि सभी साहब लोगों की हत्या कर दी जाए। ब्रिटिश सिपाहियों को खदेड़ दिया जाए। ब्रिटिश कम्पनी की अधीनता कभी स्वीकार नहीं करेंगे। क्यों न हमें इस वैतरणी नदी की तरह खून बहाना पड़े। उन्होंने सेरेंगसिया घाटी को अपना युद्ध स्थल बनाया। घाटी की सड़क में बहेड़ा (लुपंग) आंवला (मेरेल) हर्रा (रोला) आदि फलों को बिछा दिया गया। सड़क के किनारे मधु-मक्खियों के छत्तों को रख दिया गया। तीर-धनुष, हुतुर लाँ टोंगा अःसर एवं अन्य घातक हथियारों से लैस होकर घाटी के किनारे गुफाओं में छिप गए। जैसे ही ब्रिटिश कम्पनी की फौज उस घाटी की ओर बढ़ी हो लड़ाकुओं ने तीर-धनुष से उन पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया। ब्रिटिश फौज में इससे भगदड़ मच गई। फौज एवं घोड़े रोला, लुपूंग एवं मेरेल में फिसलकर गिरने लगे। उन लोगों पर हो विद्रोहियों ने जलाया हुआ गोबर, राख के साथ मिलाया हुआ मिरचा गुण्डा (पाउडर) फेंका। जिससे उनकी आँखे जलने लगी और मधुमक्खियों के डंक मारने से ब्रिटिश फौज अपनी जान बचाकर भागने लगा।

ब्रिटिश फौजों के काफी संघर्ष करने के बाद पोटो, बेराई नारा, पांडुवा, डेबाय, बोड़ेया आदि लड़ाकू सरदारों को कप्तान टिकेल ने दलाल हो लोगों की मदद से 8 दिसम्बर, 1837 को पकड़ लिया। इसमें भी घासी सिंह नौ दो ग्यारह होने में सफल रहे। पकड़े गए

हो सरदारों को जगन्नाथपुर कैंप लाया गया। जवाब तलब के बाद विलकिन्सन ने पत्रांक संख्या 1365 दिनांक 5 दिसम्बर, 1837 के आदेशानुसार पांडुवा नारा बोड़या, पोटो और बेराई को फाँसी की सजा सुनायी गयी। 1 जनवरी, 1838 को सुबह उक्त वीरों को भीड़ के समक्ष फाँसी दी गयी। मगर साहसी हो वीर सपूतों के प्रति इतना हृदय विदारक अत्याचार होने के बाद भी हो वीर अपनी वीरता को अपनी बाजुओं में संजोकर रखे। जब चाईबासा में अंगरेज फौज पहली बार पहुँची तब फौज के डॉ. डनवर अपने घोड़े पर सवार होकर इधर-उधर घूम रहे थे इसी समय वीर घासी सिंह जवान डॉ. डनवर के सामने खड़ा हो गया। डॉ. डनवर ने जवान से पूछा, तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है? वीर जवान घासी सिंह ने डॉ. डनवर को घोड़े से खींचकर नीचे उतारा और थप्पड़ मारते हुए कहा "अगर तुम्हें प्यास लगी है तो पानी मांग लो, अगर भूख लगी है तो खाना मांग लो, मगर मेरे देश में मेरा नाम पूछनेवाला तुम कौन होते हो।"

इस तरह से उन हो वीर सपूतों ने अपने देश, समाज, जाति, धर्म-दस्तूर एवं सौ बहनों की इज्जत आबरू के लिए बलिदान हो गए। वे सांड़ों की तरह लड़ते एवं सिंहों की तरह दहाड़ते थे। मगर आज इतिहास के पन्नों पर कहीं भी उन वीरों का नामों निशाँ नहीं मिलता। लगता है इतिहासकारों एवं लेखकों के पास या तो स्याही की कमी थी या पन्नों की कमी। मगर आज झारखण्ड नव-निर्माण के साथ ही अनेकानेक वीर आदिवासी सपूतों का नाम हमारे सामने चलचित्र की भाँति उभरकर आ रहा है।

आज हमें उन वीर शहीदों की कुर्बानियों से सीख लेनी चाहिए ताकि हमारा जो अस्तित्व नेस्तनाबूद होता चला जा रहा है उसे हम संजो कर रख सकें।

अन्ततः मैं उन पृथ्वीपुत्र हो वीर शहीदों को शत् शत नमन करती हूँ जिन्होंने अपनी जन्म भूमि, कर्म भूमि, पवित्र भूमि, मुक्ति, भूमि की रक्षा के लिए अंतिम सांस तक अपने क्षुद्र साधनों से अदम्य साहस से युद्ध किया था।

(लेखक - सरस्वती गागराई)

❖❖

अध्याय 30

आजादी के योद्धा : 3 सिंतबर 1857 के सिपाही विद्रोह में दिया साथ

खूब लड़े सिंहभूम के राजा अर्जुन सिंह

सिंहभूम के राजा अर्जुन सिंह की राजधानी चक्रधरपुर में थी, झारखंड में शांति का साम्राज्य स्थापित होने तथा कप्तान सर थॉमस विलकिन्सन की चलाई हुई प्रशासनिक मानकी मुंडा व्यवस्था के फलीभूत होने के पहले ही सिंहभूम सिपाही विद्रोह की चपेट में आ गया था। रांची एवं हजारीबाग में सिपाहियों के बगावत करने पर उन्हें दबाने के लिए रामगढ़ बटालियन की टुकड़ी भेजी गयी। लेकिन यह टुकड़ी भी विद्रोही हो गयी। इस खबर से स्थिति कुछ ऐसी हो गयी कि चाईबासा का प्रधान सहायक आयुक्त कप्तान सिमोर घबरा गया। वह चाईबासा छोड़ कर सरायकेला के राजा चक्रधर सिंह की शरण में चला गया। कुछ दिनों के बाद वह सिंहभूम राज्य का जिम्मा चक्रधर सिंह को सौंप कर खुद कलकत्ता भाग गया। कप्तान सिमोर की भीरूता से चाईबासा के सिपाहियों और सैन्य दल को रामनाथ सिंह और भगवान सिंह (दोनों सिपाही) की अगुवाई में और हौसला व साहस मिला।

बागियों ने लूटा खजाना

सिपाही विद्रोहियों ने 3 सितंबर, 1857 को चाईबासा में सरकारी खजाने से 20 हजार रूपये लूट लिये। उन्होंने रांची के बागियों से मिलने की इच्छा जाहिर की, बागी सिपाही सरकारी खजाना लूट कर और साथ में बंदूकें लेकर रांची की ओर बढ़े उस दिन काफी वर्षा हो रही थी, इसलिए चक्रधरपुर की संजय नदी की बाढ़ ने फौज के आगे बढ़ने में बाधा डाल दी। उस समय नदी पर कोई पुलिया भी नहीं थी। उफनती नदी को फौज कैसे पार करती? दूसरी ओर इन बागी फौजों के खिलाफ सरायकेला के राजा चक्रधर सिंह और खरसावां के राजा ठाकुर हरि सिंह ने अपने-अपने क्षेत्र की सीमाओं में सैनिकों की चौकसी बढ़ा दी, ताकि बागी सिपाही कहीं सरायकेला और खरसावां क्षेत्र में प्रवेश न कर जायें। इस परिस्थिति में सिंहभूम के राजा अर्जुन सिंह को दया आ गयी और उन्होंने सैनिकों को अपने यहां शरण देने के लिए जग्गू दीवान को दो हाथियों के साथ जाने का निर्देश दिया। कई दिन तक लगातार भारी वर्षा होने के कारण बागी फौज सात सितंबर को चैनपुर गांव के बाबूघाट में दो हाथियों



के सहारे संजय नदी पार कर सकी। बागी फौज ने चैनपुर के बाबू (जमींदार) के घर में डेरा जमाया, जहां उनके भोजन की व्यवस्था की गयी थी। संजय नदी पार करने में बागी फौजों को पांच दिन लग गये थे, जिससे उनकी हालत बिगड़ने लगी और कई फौजी बीमार पड़ गये। वे रांची पहुंचने की स्थिति में नहीं थे। इसलिए राजा अर्जुन सिंह ने उन्हें अपने यहां नौकरी देने का प्रस्ताव दिया। फौजों ने राजा के यहां नौकरी करने के लिए नानुकुर करते हुए मजबूरी में स्वीकार कर लिया। सरकारी खजाने से लूटे गये 20 हजार रूपये और बंदूकें भी राजा के यहां जमा कर दीं। राजा अर्जुन सिंह ने फौजों की एक सभा की और उन्होंने कहा कि सबका स्वामी ईश्वर है और पूरे सिंहभूम में राज करनेवाला राजा अर्जुन सिंह है।

अर्जुन सिंह बागी घोषित

16 सितंबर को लेफ्टिनेंट आर.सी. वर्च जो मुख्य सहायक आयुक्त कप्तान सिमोर की जगह नियुक्त किया गया। वह सरायकेला और खरसावां के राजा सहित तीन हजार लोगों के साथ चाईबासा पहुंचा। वर्च ने पिछली घटनाओं की समीक्षा की और राजा अर्जुन सिंह को बागी करार देकर गिरफ्तारी का आदेश जारी किया। अंगरेज शासकों की इस कार्रवाई को देख कर राजा अर्जुन सिंह ने अपना गढ़ छोड़ दिया और गांवों में अपनी प्रजा के साथ समय काटने लगे। जनता ने ओटार गांव में एक सभा का आयोजन कर अपने राजा अर्जुन सिंह का साथ देने का फैसला किया,जबकि सरायकेला-खरसावां के राजा, केरा के ठाकुर और आनंदपुर के जमींदार सभी अंगरेज शासक का साथ दे रहे थे। इस स्थिति में राजा अर्जुन सिंह का सहारा सिर्फ जनता ही थी ओर वह विद्रोही नेता ही नहीं, बल्कि जन आंदोलन के नेता बन गये।

विद्रोह में मिला जनता का साथ

दिसंबर महीने के अंत में लूसिटन जो मानभूम और सिंहभूम का अस्थायी विशेष आयुक्त नियुक्त हुआ था, उन्होंने सिंहभूम में एक विराट आंदोलन की सूचना भेजी थी, विद्रोह में आदिवासी, कुड़मी और स्थानीय लोग काफी संख्या में शामिल हो गये थे। 17 जनवरी 1858 को कर्नल फोरस्टर के अधीन शेखबत्ती बटालियन चाईबासा पहुंची और तीन-चार

दिन के बाद ही अर्जुन सिंह के चक्रधरपुर स्थित गढ़ को विध्वंस कर दिया और तत्कालीन चक्रधरपुर ग्राम को नष्ट करते हुए बहुत से स्थानीय लोगों का कत्ल कर दिया। इस तरह कुछ दिनों तक अर्जुन सिंह और उनके समर्थकों ने सामना किया।

सिंहभूम प्रमंडल के तत्कालीन सहायक आयुक्त एपी स्कीट मौनक्रीफ ने बंगाल सरकार के सचिव ए.आर. यंग को चक्रधरपुर से 27 मार्च, 1858 को संवाद भेजा कि उसे अतिरिक्त सेना की जरूरत है। वे लिखते हैं कि उनकी छावनी पर पोड़ाहाट के राजा के बागी फौज ने हमला किया और उसने फौजों को मार भगाया। लेकिन उसके पास जो फौज है, उससे विद्रोहियों को जंगल से खदेड़ कर नहीं निकाला जा सकता है. उसका विचार था कि चक्रधरपुर की फौजी टुकड़ी के अलावा कुछ और फौजियों को चाईबासा में भी रखना आवश्यक था। वह उस स्थान पर अंगरेजी फौजों के बजाय देसी सिपाहियों को ही उपयुक्त समझता था, जो विद्रोहियों का पीछा कर सकें और अनुभवों के अधार पर जंगलों में छिटपुट युद्ध सफलतापूर्वक कर सकें। 1858 के मार्च महीने से लेकर जून तक सरकारी फौजों ने अनवरत युद्ध, वेल्डन और स्कॉट के नेतृत्व में चलता रहा। वे क्रमशः चक्रधरपुर में सेना के प्रथम और द्वितीय अफसर थे. अंततः विद्रोही जंगलों तथा पहाड़ी भागों में शरण लेने को बाध्य हुए. कई लोगों को फांसी की सजा दी गयी, कालापानी जेल भेजा गया। बागी फौजों में अधिकतर लोगों को फांसी की सजा मिली। जो लोग बूढ़े हो गये थे, उन्हें कालापानी और जेल की सजा दी गयी।

1859 में किया आत्मसमर्पण

इन सारी परिस्थितियों से राजा अर्जुन सिंह का विद्रोही मन पीछे नहीं हटा, लेकिन बदले में अंगरेजों ने साजिश, षडयंत्र और दबाव का रास्ता अख्यितार किया। राजा अर्जुन सिंह को आत्मसमर्पण कराने के लिए उनके ससुर, मयूरभंज के महाराजा को माध्यम बनाया गया। अंगरेज शासकों ने उन्हें भी धमकी दी कि यदि आप अपने दामाद अर्जुन सिंह को हमारे हाथों आत्मसमर्पण नहीं कराते हो, तो आपको भी राज-पाट से हाथ धोना पड़ेगा। परिणामस्वरूप अर्जुन सिंह ने 15 फरवरी, 1859 को अपने अनुयायियों के साथ छोटानागपुर के आयुक्त डाल्टन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और सिंहभूम का सिपाही विद्रोह का गदर बिल्कुल दब गया। मानभूम और सिंहभूम के विद्रोह दमन कार्य में करीब 80 गांवों को ध्वंस किया गया और एक हजार पशु तथा सैकड़ों मन अनाज जब्त किया गया।

राजा के प्रति डाल्टन का विचार

अंत में राजा अर्जुन सिंह छोटानागपुर के आयुक्त डाल्टन से मिले और उसके समक्ष लूटे हुए खजाने, बंदूकें सुपुर्द कर दीं। राजा ने स्पष्ट किया कि ज्यों ही वे बागी घोषित किये गये, उन्हें भय हुआ कि सेनानायक उनके साथ विचारपूर्व व्यवहार नहीं करेंगे और इसलिए वे वहां नहीं गये। डाल्टन यद्यपि एक उच्चस्थ पदाधिकारी था, फिर भी उसे अपने से छोटे पदाधिकारी लेफ्टिनेंट वर्च के सामने झुकना पड़ा। लेफ्टिनेंट आर.सी. वर्च अर्जुन सिंह के

खून का प्यासा था। इसी कारण से वह फोर्ट विलियम में बंगाल सरकार के सचिव के साथ, स्थानापन्न आयुक्त की उपेक्षा कर बराबर पत्राचार करता था। 30 सितंबर 1859 को बंगाल सरकार के सचिव के नाम 224 वें पत्र में डाल्टन ने लिखा था कि राजा अर्जुन सिंह के रांची आगमन तक के समय को विद्रोह नहीं कहा जा सकता है, बल्कि इन सेवाओं के लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं।

यह बात ध्यान देने के लायक है कि उस समय भी राजा पूर्ण स्वतंत्र था, जब डाल्टन ने उसे आत्मसमर्पण करने का आदेश दिया और उपरोक्त पत्र के अनुसार यह आत्मसमर्पण बिना किसी शर्त करने को कहा गया। डाल्टन ने आशा की थी कि सरकार राजा को क्षमा प्रदान करेगी। परिस्थिति के वशीभूत राजा अर्जुन सिंह अकारण विशेष त्रस्त हो गये और एक धारणा बना ली कि लेफ्टिनेंट वर्च के समक्ष आत्मसमर्पण उनके लिए मौत का भी रूप धारण कर सकता है।

इस तरह विद्रोह का तूफान गुजर जाने के बाद भी प्रपंचवश वह विद्रोही ही बने रहे. राजा अर्जुन सिंह को राजबंदी बना लिया गया और अंगरेज शासकों ने उन्हें बनारस जेल भेज दिया, जहां 30 साल गुजरने के बाद 1980 में उनकी मृत्यु हो गयी। राजा के आत्मसमर्पण के तकरीबन एक साल बाद जग्गू दीवान भी अंगरेज सैनिकों के हाथों पकड़ा गया। जग्गू दीवान को फांसी की सजा दी गयी। राजा अर्जुन सिंह के शासन अधीनस्थ सिंहभूम राज्य में प्रशासनिक परिर्वतन किया गया। कुछ इलाकों को सरायकेला ओर खरसावां राज्य क्षेत्र में मिला दिया गया और अर्जुन सिंह का एकमात्र लड़का कुंवर नरपत सिंह को पोड़ाहाट राजा के रूप में घोषित किया गया। नरपत सिंह की मृत्यु 1934 में हो गयी और तब से लेकर 1947 तक यह क्षेत्र अंग्रेज सरकार के शासन में रहा। राजा अर्जुन सिंह के बारे में हो भाषा में एक गाना प्रसिद्ध है :

नोते बामणेघाटी, नोते मुगलबोंदी
प्यावं का बोंगा ताना, टियोल-टियोल,
नोते गितीलाता, ओंते सिंहासन बुरू
सातभया बुरू लातार रे, ओंते खडकाई मारांग
गाडा जापा रे,
सिंहभूम रेया सिंह राजा, अंग्रेज लो लड़ाई केडा
सोबेन अंग्रेज को डेबरा बुरू, काट भारी निर एना
अर्जुन राजा, जग्गु दीवान साब कियेते, अंगरेज
को तोलकेडा
नोते बामणेघाटी,नोते मुगलबोंदी.....

(साभार – प्रभात खबर)

(लेखक-शैलेन्द्र महतो, पूर्व सांसद)

❖❖

अध्याय 31

सारांडा के दो शहीद पुत्र मंगल होनहागा और सांमा गुड़िया

एशिया का सबसे बड़ा जंगल 'सारन्डा' आज अपनी दुदर्शा और अपने दो पुत्र के शहीद होने से आँसू बहा रहा है। इस जंगल में सात सौ पहाड़ था। अब यह क्षेत्र सिमट कर रह गया। इस जंगल में अनेक बहुमूल्य कीमती लकड़ियाँ थीं। यहाँ से माफिया मोटी-मोटी वृक्षों को काटकर अन्यत्र ले जाते और करोड़ों कमाते थे। आज इस क्षेत्र में माफिया लकड़ी तस्कर ही नक्सली है।

यहाँ जो भी मूलवासी आदिवासी इस क्षेत्र में आदि काल से निवास कर रहे हैं अब भी वन ही उनकी जीविका का साधन है। यहाँ के आदिवासी जल, जमीन और जंगल की रक्षा करते हुए अपनी छोटी-मोटी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, ईंधन के लिए छोटे-छोटे लकड़ियों का प्रयोग करते हैं। प्रतिदिन उपयोग के लिए पत्ते, दातुवन, आदि शामिल है। जंगल से ही मशरूम, जड़ी-बूटी, तेल के लिए करंज, नीम, कुसुम डोरी आदि प्राप्त करते हैं। यानी आदिवासियों के लिए जंगल ही सब कुछ है। इसलिए जंगल को आदिवासियों का 'चेरी' कहा जाता है।

पिछले कई वर्षों से नक्सलियों के नाम पर यहाँ के आदिवासियों को अपनी भूमि से बेदखल करने की साजिश रची जा रही है क्योंकि यहाँ अकूत खनिज सम्पदा भरी पड़ी है। जैसे आयरन ओर तथा अन्य खनिज पदार्थ। देश तथा अंतराष्ट्रीय स्तर से मेगा उद्योगपतियों एवं मल्टी नेशनल कम्पनियों की नजर इस क्षेत्र की धन-सम्पदा पर लगी हुई। राज्य शासन एवं प्रशासन उक्त उद्योगपतियों के हित तथा स्वलाभ के लिए कठपुतली बना हुआ है।

नक्सलियों के नाम पर आदिवासियों में भय पैदा कराने और आदिवासी इलाका छोड़कर भाग जाये ताकि वे उद्योगपतियों का विरोध न कर सके। लेकिन यहाँ के आदिवासियों की हत्या या विस्थापित कर सरकार की कोई भी योजना सफल नहीं हो सकता। क्योंकि यहाँ पर आदिवासी आदि काल से रहती आयी है। अब तक सरकार ने इसके लिए कुछ भी नहीं किया। ऐसे में यदि कोई उद्योगपति यहाँ कंपनी स्थापित करेगी तो आदिवासियों के हित के लिए कार्य करेगी। सरकार को गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि यहाँ के जनजीवन और

भाषा संस्कृति बिना नष्ट किये, ऐसा कार्य करना चाहिए कि यहाँ के आदिवासियों को भी समाज के मुख्य धारा में जोड़ना चाहिए। लेकिन सरकार आदिवासियों नक्सलियों के नाम पर मौत की घाट उतार दे रही है। इस का पुख्ता प्रमाण है शहीद मंगल होनहागा और सोमा गुड़िया।

बलिवा गाँव के दो आदिवासी युवक मंगल होनहागा और सोमा गुड़िया को वेवजह गोली मार दी गयी है। ये दोनों आदिवासी सारन्डा में जरूर सी०आर०पी०एफ० के गोलियों से मौत हो गई है लेकिन सारन्डा जंगल गवाह है ये 'सारन्डा जंगल पुत्र' जल जमीन और जंगल के लिए शहीद हो गए। मैं इन्हें हत्या नहीं मानता। जब-जब केन्द्र सरकार या राज्य सरकार आदिवासियों पर अपनी मरजी थोपती है तब आदिवासी उनके कहना नहीं मानने पर गोलियों का शिकार बनाती है।

आदिवासी प्रकृति के निकट रहने के कारण उनका स्वभाव काफी सरल होता है। अपनी सादगी के कारण उनको धोखा दिया जाता है या किसी कानून में फंसा दिया जाता है। आदिवासी इतना सीधा होता है कि किसी अनैतिक कार्य को करने के पहले सौ बार सोचता है। तब किसी कार्य को अंजाम देता है। झारखंड में कोई भी आदिवासी एम०सी०सी० या उग्रवादी बना है तो गैर आदिवासी द्वारा उग्रवादी या एम०सी०सी० बना दिया जाता है। आदिवासी डर से उग्रवादी बनने के लिए तैयार हो जाते हैं। उसके बाद मुख्य उग्रवादी के नियमानुसार चलना पड़ता है।

30 जून 2011 को मंगल होनहागा उम्र 30 वर्ष ग्राम बलिवा, थाना छोटा नागरा जिला पश्चिमी सिंहभूम झारखंड को नक्सली के नाम पर शहीद हो गए। 29.6.2011 को सी०आर०पी०एफ० के जवान बलिवा गाँव से करीब 15-16 लोगों को पकड़ा गया। उन सभी को बन्दूक को नोक पर हाथ बान्धकर जंगल में ले जाया गया। रात भर जंगल में रखकर दूसरे दिन तड़के सुबह 30 जून को उनसे समान ढुलवाया जा रहा था उसी में से मंगल होनहागा जवानों का समान ढोनें से इन्कार किया तब उसको गोली मार दी गयी। मंगल होनहागा का भाई सुनिया भी वहीं पर था। अन्य साथी को ग्रामीण लोगों ने भी देखा कि मंगल होनहागा को सी०आर०पी०एफ० वालों ने गोली मार दिया।

20 अगस्त, 2011 को सोमा गुड़िया भी नक्सली के नाम पर शहीद हुए। सी०आर०पी०एफ० एवं कोबरा के जवान कई लोगों को बलिवा से पकड़े, बलिवा गाँव के चबूतरा में सबों को निर्दयता से पिटाई की गई। उसमें से सोमा गुड़िया को पकड़ कर ले गये और उसको गोली मार दिया।

मंगल होनहागा और सोमा गुडिया पुरखों की सम्पत्ति और जंगल के रक्षा के लिए सारंडा में तैनात थे। लेकिन सी०आर०पी०एफ० के जवानों की दृष्टि से नक्सली निकले और उन्होंने सदा के लिए सारन्डा पुत्रों को अपने गोलियों से छलनी कर दिया और दोनों शहीद हो गए।

(लेखक-प्रदीप कुमार बोदरा)

❖❖

अध्याय 32

तारीखों में सिंहभूम

(स्वशासन के लिए झारखण्डी संघर्ष)

1820-21	:	सिंहभूम हो विद्रोह।
1831-32	:	महान कोल विद्रोह (सिंगराय एवं बिन्दराय)।
1832-33	:	मानभूम और सिंहभूम में भूमिज विद्रोह
1837	:	कोल्हान पर आक्रमण और कोल्हान गवर्नमेंट स्टेट का गठन। विलकिन्सन रुल लागू।
1837	:	सिंरिगसिया घाटी की लड़ाई।
1838	:	पोटो एवं चार साथी- जगन्नाथपुर/सिरेंगसिया हत्याकांड।
1857-59	:	सिंहभूम में पोड़ाहाट के राजा अर्जुन सिंह के नेतृत्व में विद्रोह।
1885-1900	:	बिरसा आन्दोलन (उलगुलान)
1902	:	सराईकेला के संतालो द्वारा विद्रोह।
1920-20	:	हो आदिवासियों के बीच सत्य एवं पुण्य धर्म आन्दोलन संगराय हो द्वारा।
1930-31	:	सिंहभूम का हरिबाबा आन्दोलन।
1931-32	:	हो और संथालों के बीच धार्मिक सुधार आन्दोलन का प्रसार हुआ जिन्हें हरिबाबा के नाम जाना जाता है।
1935	:	मानभूम के भूमिज लोगों के बीच भूमिज-क्षत्रिय सुधार आन्दोलन।
1837	:	हो जनजाति अंग्रेजों से पराजित कोल्हान क्षेत्र को द.पश्चिम सीमान्त एजेन्सी में मिलाया गया तथा कैप्टन विलकिन्सन द्वारा कोल्हान गर्वमेन्ट स्टेट (विशेष आरक्षित स्टेट) का गठन इस क्षेत्र में विल्कन्सन हल लागू।
1937	:	कृपा सिंधु और हो लोगों के बीच उनका आन्दोलन।
1938	:	जयपाल सिंह के नेतृत्व में अलग झारखण्ड राज्य के लिए आदिवासी महासभा का गठन।

1948 : खरसांवा तथा सराईकेला में आदिवासी विद्रोह और खरसावां गोली कांड।

1948 : हजारों शहीद- खरसांवा गोली कांड।

1950 : हो लोगों के बीच लाखों बोदरा का पुनर्जागरण आन्दोलन।

1968 : जीसरी मरांडी एवं 6 साथी- चिरीगोली कांड।

1977 : सिंहभूम में कोल्हान रक्षा संघ का आन्दोलन।

1977 : शक्तिनाथ महतो- धनबाद हत्याकांड।

1978 : सिंहभूम में जंगल आन्दोलन।

1978 : 4 व्यक्ति शहीद-जायदा, चडिण्ल गोली कांड।

1978 : महेश्वर जामुदा एवं 1 साथी- इचाहातु गोली कांड।

1978 : नुपा बुड एवं 2 साथी - सेरेंगदः गोली कांड।

1980 : तिकुड़ लागुरी - बाइपी गोली कांड।

1980 : श्री शिबू सोरेन की पार्टी झारखण्ड मुक्ति मोर्चा मध्यावधि विधान सभा के चुनाव में विजयी। राँची विश्वविद्यालय में जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग (स्नातकोत्तर) की तत्कालीन कुलपति डॉ. कुमार सुरेश सिंह द्वारा स्थापना। बागुन सुम्बरुई, कांग्रेस में शामिल।

1981 : 6 व्यक्ति शहीद - कुइड़ा गोली कांड।

1981 : पृथक कोल्हान राज्य हेतु मेमोरियल-कोल्हान रक्षा संघ द्वारा लंदन में सचिव कृष्ण चन्द्र हेम्ब्रम तथा अध्यक्ष नारायण जोंकों गंगाराम कालुन्डिया शहीद दिवस।

1982 : 12 व्यक्ति शहीद- गुवा गोली कांड।

1982 : गंगाराम कालुन्डिया - इलीगड़ा हत्या कांड।

1982 : अजीत महतो एवं 1 साथी तिरिलह गोली कांड।

1983 : बीदर नाग - गुवा हत्याकांड/गोली कांड।

1984 : अश्विनी सवैंया -शहीद।

1984 : लाल सिंह मुण्डा - बन्दगांव हत्या कांड।

1985 : आदिवासी हो समाज महासभा की स्थापना।

1985 : अन्थोनी मुर्मू एवं 14 साथी - बांझी गोली कांड।

1987 : निर्मल महतो - जमशेदपुर

❖❖

लेखिका परिचय

नाम	–	**डॉ. दमयन्ती सिंकु (देवगम)**
ग्राम/पोस्ट	–	खैरपाल
जिला	–	पश्चिमी सिंहभूम (झारखण्ड)
शिक्षा	(i)	बी०ए० (हिन्दी प्रतिष्ठा)
	(ii)	एम०ए० 1988 जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा हो
	(iii)	यू०जी०सी० नेट (1991) नई दिल्ली
	(iv)	राजीव गांधी नेशनल फेलोशिप (2005) नई दिल्ली
शोध कार्य	–	"हो जनजाति में बा गीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन" Ph.D 2011

प्रकाशित रचनाएं –
(i) हो हिन्दी शब्दकोश (कजि-बुरू) (2007)
(ii) सिंहभूम के शहीद लड़ाका हो (2008)
(iii) पुतिनुतुम (Catalogue) (2010)

अप्रकाशित रचनाएँ –
(i) दोसतुर आन्डो संसकिर
(ii) हो बंकुड़ि, सोनोतो कजि ओन्डो कजि जुड़ि कजि (हिन्दी अनुवाद के साथ)
(iii) मरङ गोमके जयपाल सिंह श्रुति नाटक का हिन्दी अनुवाद (प्रेस में)
(iv) हो साहित्यकार कोव : जिदन
(v) हो दुरंग हिसिर (गीतमाला) हिन्दी अनुवाद
(vi) हो दुरंग कोव : सेतेङ डबुरा
(vii) होड़ो निबंधावली
(vii) मागे दुरंग (हो अनुवाद)
(ix) हो एतोनाबु (हो सीखें Learn Ho) (प्रेस में)
(x) आत्मकथा
(xi) झारखण्ड दिसुम रेम अहः उतु
(xii) हो जनजाति में बा गीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन (शोध प्रबन्ध)

यात्राएँ – सम्पूर्ण भारत, स्वीटजरलैंण्ड, नीदरलैण्ड (हॉलैण्ड)। न्यूयार्क।

❖❖

लेखक परिचय



डॉ० दमयन्ती सिंकु का जन्म 10 दिसम्बर, 1961 को, गाँव खैरपाल, चाईबासा (झारखण्ड) के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। आपने जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा 'हो' में स्नातकोत्तर किया। तत्पश्चात् ''हो जनजाति में 'बा' गीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन'' शीर्षक शोध प्रबन्ध पर पी-एच०डी० की उपाधि 2011 में रांची विश्वविद्यालय, रांची से प्राप्त किया। आपने ''हो-हिन्दी शब्द कोष (कजि-बुरू)'' प्रकाशित किया है। 'हो' भाषा के प्रचार-प्रसार कार्य हेतु सम्पूर्ण भारत, स्विट्ज़रलैण्ड, नीदरलैण्ड आदि की यात्रायें भी कर चुकी हैं।

पुस्तक परिचय

प्रस्तुत पुस्तक सिंहभूम के स्वतंत्रता सेनानी एवं शहीदों के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करती है। झारखण्ड के नवयुवकों, शोधार्थियों एवं जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

K.K. Publications
(Publisher of Indian Thinkers)
18, Katra, Allahabad - 211 002 (INDIA)
Ph. 0532-6452973, 9389485578

978-81-87568-57-5